समाधि के सोपान

एफ जे अलेकजेन्डर

अद्वैत आश्रम

633
Dvlev
SRI RAMAKRISHNA ASHRAMA
LIBRARY SRINAGAR.
Accession No- 4699
Date

समाधि के सोपान

SRI RAMAKRISHNA ASHRAM
LIBRARY
Shivalya, Karan Nagar,
SRINAGAR.
Class No. 294.555 (H)
Book No. आलोके स.2
Accession No. 4699

समाधि के सोपान

SRI RAMAKRISHNA ASHRAMA
LIBRARY SRINAGAR.
Accession No- 4699
Date ... ...

लेखक
एफ. जे. अलेकजेन्डर

अनुवादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

अद्वैत आश्रम
५ डिही एण्टाली रोड
कलकत्ता ७०० ०१४

प्रकाशक
स्वामी अनन्यानन्द
अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम
मायावती, पिथोरागढ़, हिमालय

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण, मई १९८४
5M3C

मुद्रक
सौरेन्द्रनाथ दासगुप्त
सन् लिथोग्राफिन्ग क०
पी. २० सी. आइ. टी. रोड, कलकत्ता १०

प्रकाशकीय

IN THE HOURS OF MEDITATION पुस्तिका अंगरेज़ी पढ़ने वाली जनता में अत्यन्त लोकप्रिय रही है। अंगरेज़ी भाषा में इसके अबतक ग्यारह संस्करण छप चुके हैं, फ़िर भी इसकी माँग उसी प्रकार बनी हुई है। पुस्तिका के मूल लेखक एक साधक थे। अतः उन्होंने आध्यात्मिक साधना की सूक्ष्मता तथा गहराइयों को अत्यन्त सरल किन्तु सशक्त शब्दों में चित्रित किया है।

पुस्तिका की विशेषता यह है कि इसमें किसी वाद या मत विशेष का प्रतिपादन नहीं किया गया है अपितु प्रत्येक धर्म तथा मत के निष्ठावान् आध्यात्मिक साधकों के जीवन में आनेवाली कठिनाइयों तथा उनके समाधान की ओर संकेत किया गया है। साधना की सफलता के लिए साधकों में जिन गुणों का होना आवश्यक है, उनका उल्लेख अल्प शब्दों में किन्तु सुस्पष्ट रूप से किया गया है। पुस्तिका सहजपाठ्य तथा प्रेरक है। अल्प शब्दों में कहना हो तो पुस्तिका आध्यात्मिकता को व्यवहार में उतारने की कुंजी है।

धर्म-प्राण हिन्दीभाषी जनता के लिए पुस्तिका विशेष लाभप्रद होगी इसी उद्देश्य से इसका हिन्दी अनुवाद जनता जनार्दन की सेवा में प्रस्तुत है। रामकृष्ण मठ, बेलूड़ के स्वामी सत्यरूपानन्द ने इस पुस्तिका का हिन्दी अनुवाद कर आध्यात्मिक भावधारा के प्रचार में हमें सहयोग दिया है। उनके इस सहयोग के लिए हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

प्रकाशक

अद्वैत आश्रम
मायावती
पिथोरागढ़
हिमालय

SRI RAMAKRISHNA ASHRAMA
LIBRARY. SRINAGAR.
Accession No- 4699
Date ... ...

प्राक्कथन

वर्तमान पुस्तिका मूलरूप में एक छद्मनाम से छपी थी, जो श्री एफ. जे. अलेकज़ेन्डर की लेखनी से निःसृत हुई थी। मृत्यु के क्रूर हाथों ने अलेकज़ेन्डर के उदीयमान भविष्य को बीच में ही काट दिया। उसका प्रारंभिक जीवन नेब्रास्का (अमेरिका) के ओमाहा के स्त्रीमठ में बीता, जहाँ उसने प्रारंभिक शिक्षा पाई। किन्तु उसके समान वृत्ति वाले लड़के के लिए पुराने ढर्रे के उस मठ का निर्जन वातावरण असहनीय हो उठा तथा विशाल संसार की स्वतंत्रता का आनंद लेने के लिए वह वहाँ से निकल पड़ा। उसने एक अमेरिकी नगरके एक होटल में एक बैरे के रूप में जीवन प्रारंभ किया तथा भाग्य के विभिन्न थपेड़े खाते हुए एक समाचार पत्र के कार्यालय में पहुँचा। वहाँ एक अच्छे तथा प्रभावी लेखक के रूप में उसकी प्रतिभा प्रगट हुई। किन्तु सर्वदा एक तीव्र आध्यात्मिक अशांति उस पर हावी रहती। यह अशांति तब तक न मिटी जब तक कि संयोग से उसने स्वामी विवेकानन्द की कुछ रचनाओं को पढ़ा, जिसने कि उसके लिए एक नये संसार का मार्ग खोल दिया। इसके पश्चात् स्वामी विवेकानन्द की वाणी को उसने गुरुदेव का आह्वान माना। यह आह्वान इतना सशक्त था कि वह स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित संन्यासी संघ की सेवा में स्वयं को समर्पित करने के लिए भारतवर्ष आ गया।

श्री अलेकज़ेन्डर १९११ में बेलूड़ मठ आये तथा उसके पश्चात् वे अद्वैत आश्रम, मायावती में सम्मिलित हो गये। यहाँ उन्होंने मन प्राण पूर्वक स्वयं को कार्य में समर्पित कर दिया तथा स्वामी विवेकानन्द जी की जीवनी के प्रकाशन कार्य में बहुमूल्य सहयोग दिया। यह कार्य उनके नाम को अमर कर देगा।

वे एक बहुत रोचक लेखक थे। प्रबुद्ध भारत में छद्मनाम या बिना

नाम के कुछ लेख उन्होंने लिखे थे जो अब इस पुस्तिका के रूप में प्रकाशित है। तीव्रतर आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिए वे मायावती से अल्मोड़ा चले गये। दो वर्ष वहाँ रहने के पश्चात् स्वास्थ्य लाभ के लिए अमेरिका लौट गये। किन्तु १९१७ में क्षयरोग से उनकी वहाँ मृत्यु हो गई।

जो कोई भी उनके संपर्क में आया वह उनके सशक्त मन तथा बाल-सुलभ सरलता से चकित रह गया। यह देख कर आश्चर्य होता है कि वे भारतीय भाव एवं आदर्श से कितने ओतप्रोत थे। उनके आन्तरिक जीवन को प्रतिबिम्बित करने वाले प्राक्कथन के पश्चात् के ये पृष्ठ उनकी आध्यात्मिक अनुभूति की गहनता को प्रगट करते हैं। ध्यान के क्षणों में इस शिष्य के मन में उठने वाले ये विचार सहस्रों उन सहयात्रियों के जीवन में दीपस्तम्भ बने जो कि आध्यात्मिक अनुभूति के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

प्रकाशक

समाधि के सोपान

(१)

कुछ क्षण ऐसे होते हैं जब व्यक्ति संसार को भूल जाता है। ऐसी घड़ियाँ होती हैं जब व्यक्ति धन्यता की उस सीमा में पहुँच जाता है जहाँ आत्मा स्वयं तृप्त तथा सर्वशक्तिमान के सान्निध्य में होती है। तब वासनाओं के सभी सम्मोहन निरस्त हो जाते हैं, इन्द्रियों की सभी ध्वनियाँ स्थिर हो जाती हैं। केवल परमात्मा वर्तमान होता है।

ईश्वर में शुद्ध तथा एकाग्र मन से अधिक पवित्र और कोई उपासना-गृह नहीं है। ईश्वर में एकाग्र हो कर मन शांति के जिस क्षेत्र में प्रवेश करता है उस क्षेत्र से अधिक पवित्र और कोई स्थान नहीं है। ईश्वर की ओर विचारों के उठने से अधिक पवित्र कोई धूप नहीं है, उससे मधुर कोई सुगंध नहीं है।

पवित्रता, आनंद, धन्यता, शांति!! पवित्रता, आनंद, धन्यता, शांति!! ये ही ध्यानावस्था के परिवेश का निर्माण करते हैं।

आध्यात्मिक चेतना इन्हीं शांत और पवित्र घड़ियों में उदित होती है। आत्मा अपने स्रोत के समीप होती है। इन घड़ियों में शुद्ध अहं का यह झरना खरस्रोता महान् नदी हो कर सत्य और स्थायी उस अहं की ओर बहता है जो ईश्वर चेतना का महासागर है तथा वह एकं अद्वितीयं है।

ध्यान की घड़ियों में जीवात्मा सर्वशक्तिमान से अभय, अस्तित्वबोध तथा अमरत्व लाभ करता है, जो कि उसका स्वाभाविक गुण है।

ओ मेरी आत्मा अपने आप में समाहित हो जाओ। सत्य के साथ शांति की घड़ियों को खोजो। स्वयं अपनी आत्मा को ही सत्य का सार जानो! ईश्वरत्व का सार जानो! वस्तुतः ईश्वर हृदय में ही निवास करते हैं।

(२)

भयभीत न होओ! सभी भौतिक वस्तुएँ छाया के समान हैं। दृश्य जगत् में मिथ्या का ही प्राधान्य है। तुम ही सत्य हो जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। यह जान लो कि तुम अटल हो। प्रकृति जैसा चाहे वैसा खेल तुम्हारे साथ करे। तुम्हारा रूप स्वप्नमात्र है। इसे जानो और संतुष्ट रहो। तुम्हारी आत्मा निराकार ईश्वर में ही अवस्थित है। मन को टिमटिमाते प्रकाश का अनुसरण करने दो। इच्छायें शासन करती हैं। सीमाओं का अस्तित्व है। तुम मन नहीं हो। इच्छायें तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकतीं। तुम सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्ता के अंतर्गत समाविष्ट हो। स्मरण रखो! जीवन एक खेल मात्र है। अपनी भूमिका निभाओ। अवश्य निभाओ। यही नियम है। किन्तु साथ ही तुम न तो खिलाड़ी हो, न खेल हो और न ही नियम। स्वयं जीवन भी तुम्हें सीमित नहीं कर सकता। क्या तुम असीम नहीं हो? जीवन तो स्वप्न के पदार्थ से बना है। तुम स्वप्न नहीं देखते। असत्य के स्पर्श और दोष से परे तुम स्वप्नरहित सत्ता हो। इसे अनुभव करो! अनुभव करो और मुक्त हो जाओ! मुक्त!

शांति! शांति! मूक शांति!! श्रवणीय शांति! वह शांति जिसमें ईश्वर के शब्द सुने जाते हैं। शांति और मौन! तब ईश्वरीय ध्वनि आती है। श्रवणीय मौन के भीतर श्रवणीय।

मैं तुम्हारे साथ हूँ! सदैव, सदैव के लिए। तुम मुझसे दूर कभी नहीं रहे और न ही कभी दूर हो सकते हो। मैं ही तुम्हारी आत्मा हूँ! ब्रह्माण्ड से परे, सभी स्वप्नों से परे आप्तकाम हो अनंतता के मध्य मैं विराजमान हूँ। और तुम भी वही हो। क्योंकि मैं ही तुम हो और तुम ही मैं हूँ। सभी स्वप्नों का त्याग कर मेरे पास आओ। मैं तुम्हें अज्ञान और अंधकार के समुद्र के उस पार प्रकाश और शाश्वत जीवन में ले जाऊँगा। क्योंकि मैं यह सब हूँ और तुम और मैं एक हैं। तू मैं हूँ और मैं तू है। जाओ शांति में निवास करो। जब मौन और शांति के क्षण पुनः आयेंगे तब तुम मेरी आवाज़ सुनोगे। ईश्वर की ध्वनि! ईश्वरीय ध्वनि!!

(३)

पुनः वह घड़ी समीप है। दिन संध्या में समा रहा है। बाहर सब कुछ शांत है। और जब प्रकृति शांत होती है तब आत्मा अधिक शांतिपूर्वक, अधिक तत्परता से हृदय की अन्तर्गुहा में समाहित होती है। इन्द्रिय तथा उसकी गतिविधियों को शांत होने दो। जीवन अपने आप में छोटा है, इच्छायें उच्छृंखल हैं। अन्ततः थोड़ा समय तो ईश्वर को दो। वह थोड़ा ही चाहता है। केवल इतना ही कि तुम अपने आप को पहचानो क्योंकि स्वयं को पहचान कर ही तुम ईश्वर को पहचान पाते हो। क्योंकि ईश्वर और आत्मा एक ही हैं। कुछ लोग कहते हैं कि हे मानव, स्मरण रखो तुम धूलिकण के समान हो। यह शरीर तथा मन के संबंध में ही सत्य है। किन्तु उच्चतर, अधिक बलवान, अधिक सत्य, अधिक पवित्र अनुभूति कहती है–हे मानव, स्मरण रख कि तू आत्मा है।

प्रभु कहते हैं तुम अविनाशी और अनश्वर आत्मा हो। अन्य सभी का नाश हो जाता है। रूप कितना भी सशक्त क्यों न हो उसका नाश होता ही है। मृत्यु और विनाश सभी रूपों की नियति है। विचार परिवर्तन के अधीन है। व्यक्तित्व विचार और रूप के ताने बाने से बना है। इसलिए हे आत्मन्, निरपेक्ष हो जाओ। स्मरण रखो कि तुम विचार और रूप के परे आत्मा हो। तुम ईश्वर के साथ एक रूप हो इसी बोध में सभी गुण सन्निहित हैं। मात्र इसी बोध में तुम अमर हो। इस बोध में ही तुम शुद्ध और पवित्र हो।

स्वामी बनने की चेष्टा न करो, तुम स्वयं स्वामी हो। तुम्हारे लिए बनने जैसी कोई बात नहीं है। तुम हो ही। होने की प्रक्रिया कितनी भी उदात्त क्यों न प्रतीत हो वह घड़ी अवश्य आयेगी जब तुम जानोगे कि प्रगति समय की सीमा में है, जब कि 'पूर्णता' शाश्वत में। और तुम समय के नहीं हो! तुम हो शाश्वतत्व के!

यदि दिव्यत्व है तो तत् त्वम् असि। अर्थात् तुम वही हो! तुम्हारे भीतर जो सर्वोच्च है उसे जानो। सर्वोच्च की पूजा करो और पूजा का

सर्वोच्च प्रकार है यह ज्ञान कि तुम और सर्वशक्तिमान अभिन्न हो। यह सर्वोच्च क्या है? ओ आत्मन्, जिसे तुम ईश्वर कहते हो वही।

सभी स्वप्नों को भूल जाओ। तुम्हारे भीतर विराजमान आत्मा के संबंध में सुनने के पश्चात् तुम्हीं वह आत्मा हो यह समझो। समझने के पश्चात् देखो, देखने के पश्चात् उसे जानो, जानने के पश्चात् उसका अनुभव करो! तत् त्वम् असि। तुम वही हो!!

संसार से विरत हो जाओ। यह स्वप्नों का मूर्त स्वरूप है। सचमुच शरीर और संसार मिल कर ही तो स्वप्नों का नीड़ है। क्या तुम एक स्वप्न-द्रष्टा बनोगे? क्या तुम स्वप्न के बंधन में सदैव के लिए बँधे रहोगे? उठो जागो और तब तक न रुको जब तक कि तुम लक्ष्य पर न पहुँच जाओ!

शांति में! गंभीर शांति में! जब केवल उनके ही शब्द सुन पड़ते हैं तब प्रभु यही कहते हैं हरि ओम् तत् सत्। शांति में प्रवेश करो। सब के परे, हाँ सभी रूपों में भी वही आत्मा व्याप्त है। उसका स्वभाव शांति है! अनिर्वचनीय शांति!!

शांति की घड़ियों में ईश्वरीय आवाज़ कहती है:– स्मरण रखो, सदैव स्मरण रखो, पवित्र हृदय व्यक्ति ही ईश्वर का दर्शन पाते हैं। पवित्रता पहली आवश्यकता है। जैसे लोग जो अपनी इच्छाओं से चालित हैं, अपनी वासनाओं के संबंध में उत्कट हैं, उसी प्रकार तुम पवित्रता के लिए उत्कण्ठित होओ। पवित्रता उपलब्ध करने की तीव्र इच्छा रखो। गहराई और अध्यवसायपूर्वक पवित्रता की खोज करो। केवल यही प्रयोजनीय है। मेरे भक्त प्रह्लाद की मेरे प्रति प्रार्थना का स्मरण करो–'प्रभु संसारी लोगों की क्षण भंगुर विषयों के प्रति जैसी आसक्ति है, जैसा प्रेम है, वही आसक्ति, वही प्रेम तुम मुझे अपने लिए दो।'

पवित्रता ईश्वर-सान्निध्य की ड्योढ़ी है। ईश्वर का चिन्तन करने के पूर्व पवित्रता का चिन्तन करो। पवित्रता वह चाबी है जिससे ध्यानरूपी द्वार जो सर्वशक्तिमान के घर ले जाते हैं, खुलते हैं।

मेरी शक्ति के समुद्र में स्वयं को फेंक दो। चेष्टा न करो। चाह न रखो। जानो कि मैं हूँ। यह ज्ञान मेरी इच्छा के प्रति पूर्ण समर्पण के साथ युक्त होकर तुम्हारा उद्धार करेगा। भयभीत न होओ। क्या तुम मुझमें नहीं हो? क्या मैं तुममें नहीं हूँ? यह जान लो कि लोग जिसे इतना महान् समझते हैं वह एक दिन चला जाता है। मृत्यु जीवन के विभिन्न प्रकारों को निगलती हुई सर्वत्र विराजमान है। मृत्यु और परिवर्तन आत्मा को छोड़ कर अन्य सभी को जाल में फँसाते और बाँधते हैं। इसे जानो। पवित्रता ही इस ज्ञान की प्राप्ति का उपाय है। यह आधार-भित्ति है। पवित्रता के साथ निर्भयता आती है और आती है स्वतंत्रता और तुम्हारे स्वरूप की अनुभूति, जिसका कि सार मैं हूँ।

तूफ़ान आने दो, किन्तु जब इच्छायें तुम्हे जलायें और मन चञ्चल हो तब मुझे पुकारो। मैं सुनूँगा क्योंकि जैसा कि मेरे भक्त ने कहा है मैं चींटी की पदध्वनि भी सुनता हूँ। और मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। जो मुझे

आंतरिकता पूर्वक पुकारते हैं मैं उनका त्याग नहीं करता। केवल आंतरिकता नहीं, अध्यवसाय पूर्वक मुझे पुकारो।

मैं विश्व नहीं, उसके पीछे की आत्मा हूँ। विश्व मेरे लिये मृतदेह के समान है। मेरी अभिरुचि केवल आत्मा में है। वस्तुओं की बाहरी विशालता से भ्रमित न होओ। दिव्यता न तो रूप में है और न ही विचारों में। वह शुद्ध, मुक्त, आध्यात्मिक, आनंदपूर्ण, रूपरहित, विचाररहित, चेतना में है जो कलुष, पाप, बंधन या सीमा से परिचित नहीं है, परिचित हो भी नहीं सकता। हे आत्मन्! अंतर के अंतर में तुम वही हो। इसकी अनुभूति तुम्हें होगी। इसका होना अनिवार्य है। क्योंकि जीवात्मा के जीवन का यही लक्ष्य है। स्मरण रखो मैं तुम्हारे साथ हूँ। मैं ईश्वर तुम्हारे साथ हूँ। तुम्हारी सब दुर्बलताओं के लिए मैं शक्ति हूँ। तुम्हारे पापों के लिए मैं क्षमा हूँ। मेरी खोज में मैं तुम्हारा प्रेम हूँ। मैं ही तू हूँ। आत्मा के संबंध में अन्य सभी विचारों को त्याग दो क्योंकि इस विचार में कि तुम्हारी आत्मा मेरी आत्मा से किसी भी प्रकार भिन्न है सभी अज्ञान और दुर्बलताएँ निहित हैं। ओ ज्योति स्वरूप! उठो, जानो कि मैं ही तुम्हारी आत्मा हूँ।

और पवित्रता ही मेरे सान्निध्य का पथ है। इसी में तुम्हारी मुक्ति है।

हरि ओम् तत् सत्। शांति! शांति!! शांति!!!

(५)

गुरु, जो कि स्वयं ईश्वर हैं, उनकी आवाज़ कहती है:–अहो! मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। तुम चाहे जहाँ जाओ वहाँ मैं उपस्थित हूँ ही। मैं तुम्हारे लिये ही जीता हूँ। अपनी अनुभूति के फल मैं तुम्हें देता हूँ। तुम मेरे हृदय-धन हो! मेरी आँखों के तारे हो। प्रभु में हम एक हैं। हमारा कार्य अनुभूति है। इसलिए मैं तुमसे अपनी एकता की अनुभूति करता हूँ। तुम्हें संसार-मरुस्थल तथा संशय के वन में फेंक देने में मुझे भय नहीं होता, यह इसलिए कि मैं तुम्हारी शक्ति की मात्रा को जानता हूँ। मैं तुम्हें अनुभवों के बाद अनुभवों में भेजता हूँ, किन्तु तुम्हारे इस भ्रमण में मेरी दृष्टि सदैव तुम्हारा पीछा करती रहती है। क्या तुम पाप करते हो? पुण्य करते हो? वह सब मेरी उपस्थिति में करते हो। मैं उन सभी को देखता हूँ। मैं तुम्हारे सभी मनोभावों को जानता हूँ। सभी प्रकार के अनुभवों एवं विचारों द्वारा मैं मेरे और तुम्हारे बीच के संबंधों को दृढ़ करता हूँ। जबतक तुम मेरी मुक्ति में सहभागी नहीं होते वह मेरे लिए व्यर्थ है। दूसरे रूप में तुम मेरी ही आत्मा हो। मेरे दर्शनों को तुम जितना अधिक ग्रहण करते हो उतने ही अधिक हम आध्यात्मिक एकता में बढ़ते जाते हैं! पृथक व्यक्तित्व के परदे गिरते जाते हैं!! तुम मेरी अपनी आत्मा हो। वे बंधन अत्यन्त निकट हैं। मेरे साथ तुम्हारे संबंध में मृत्यु और पृथकता का कोई अधिकार नही है। क्योंकि भले ही तुम्हारा जन्म किसी दूसरे स्थान में हुआ हो तथा जो शरीर मैंने धारण किया है उसे तुमने देखा भी न हो तब भी तुम मेरे एक दम अपने हो। शिष्यत्व, मेरा रूप देखने में नहीं है। किन्तु वह मेरी इच्छा को समझने में है। तुम मेरी जाल से कभी नहीं बच सकते।

मेरी इच्छाओं को ढूँढ़ो। उन शिक्षाओं का अनुसरण करो जो मेरे गुरु ने मुझे दी थीं और जिसे मैंने तुम्हें दिया है। जो एक है उसी का दर्शन करो, तब तुम मेरे सहस्रों शरीरों के साथ रहकर जितनी एकता का अनुभव करते उससे कहीं अधिक एकता का अनुभव करोगे। मेरी इच्छा और विचारों के प्रति स्थिरता और भक्ति में ही शिष्यत्व है। हम दोनों के बीच असीम

प्रेम है। शांति में प्रवेश करो। गुरु और शिष्य का संबंध वज्र से भी अधिक कठोर होता है। वह मृत्यु से भी अधिक सशक्त होता है। क्योंकि वे अपरिमेय प्रेम तथा ईश्वरीय सर्वोच्च इच्छा से बँधे हुए हैं।

ओम् तत् सत्

शिष्य प्रशंसा एवं कृतज्ञता से उत्तर देता है:–

ओ मेरे नाथ! मेरे प्रभु! मेरे सर्वस्व! मुझे यही शिक्षा दी गई है। गुरु ही ईश्वर हैं। वे दिव्य सत्य में विसर्जित होने को व्यग्र हैं। उनका दर्शन ईश्वर का दर्शन है। मेरी आत्मा की मुक्ति के लिए उनका उत्साह अथक है। गुरुकी आँखों से मैं भी दर्शन पाता हूँ। सच्चा प्रेम मृत्यु से भी अधिक बलवान है। अरे, वह जन्म से भी अधिक बलवान है। जन्म और मृत्यु मुझे उनके सान्निध्य से अलग कर सकते हैं? मैं कहता हूँ–झूठ!! गुरु ईश्वर हैं। क्या मैं कभी ईश्वर से अलग किया जा सकता हूँ? उनका नाम लेकर संघर्ष करते हुए मैं इस अंधकार समुद्र के उस पार हो जाऊँगा जहाँ सब कुछ ज्ञान और प्रकाश है। मैं निर्भयता पूर्वक, न समाप्त होने वाले भ्रम के इस जंगल में बढ़ता चला जाऊँगा क्योंकि वे मेरी सभी गतिविधियों को देख रहे हैं और यदि मैं गिर जाऊँ तो वे मुझे उठा देंगे। मेरे रास्ते में काँटे हैं, देखो! वे उन्हें दूर कर देंगे। संशय और प्रलोभन के वन्य पशु मुझ पर भले आक्रमण करें। वे उनका वध कर देंगे। या कदाचित् वे मुझे उनके रास्ते में पड़ने देंगे जिससे कि मैं अपनी शक्ति को जान सकूँ। वे मुझे उनके साथ संघर्ष करने देंगे। और जब तक मनुष्य ने अपनी परीक्षा नहीं कर ली है तब तक वह उनकी (ईश्वर की) शक्ति को कैसे जान सकता है।

जन्म और मृत्यु मेरे लिए कुछ भी नहीं है। मैं सभी सीमाओं को काट डालूँगा। मैं सभी बंधनों के परे चला जाऊँगा। मैं उनमें दिव्यता के दर्शन करूँगा। हे गुरुवर! ठीक वही सत्य जो मुझमें है वही तो आप में भी है। आप सूर्य हैं और मैं रश्मि हूँ और वह भी कि मैं सूर्य हूँ और आप रश्मि। उपनिषद् का महावाक्य 'तत् त्वम् असि', तू वही है, आप पर भी लागू होता है तथा मुझ पर भी। ओ, उस अनिर्वचनीय एकत्व की चेतना! गुरु को गुरुरूप में प्रणाम! गुरु को ईश्वररूप में प्रणाम।

ओम् तत् सत्!
तत् त्वम् असि!!
अहं ब्रह्मास्मि!!!

ध्यान की घड़ियों में आत्मा ने स्वयं से कहा–मौन में ही शांति का निवास है। और शांति पाने के लिए तुम्हें बलवान होना आवश्यक है। त्याग की शक्तिशाली निस्तब्धता में जब इन्द्रियों का विक्षोभ डूब जाता है तब मौन आता है। इस संसार-मरुभूमि में तुम पथिक हो। यहाँ न रुकना जिससे कि तुम रास्ते में ही नष्ट न हो जाओ। अपने लिए सद्विचारों का कारवाँ बना लो तथा जीवन्त विश्वास के जल की व्यवस्था कर लो। सभी मृगतृष्णाओं से सावधान रहो। लक्ष्य वहाँ नहीं है। बाह्य आकर्षणों से भ्रमित न होओ। सभी त्याग कर उन पथों से जाओ जो तुम्हें स्वयं तुम्हारी अन्तर्दृष्टि के एकांत में ले जायेंगे। अनेकत्व के जाल में फँस कर उसका अनुसरण न करो। एकत्व के जिस लक्ष्य की ओर संतगण सबसे अलग और अकेले जाते हैं उसी पथ में तुम भी जाओ। वीर होने का साहस करो। प्रारंभिक प्रयत्नों में ही असत्य को जीतो। विचलित न होओ। पवित्रता में डूब जाओ। एक उन्मत्त छलांग में स्वयं को ईश्वरीय समुद्र में डूबो दो। दिव्यत्व ही लक्ष्य है। ओ महान् ज्योतिर्मय की किरण! प्रकृति में तुम्हारे लिए और कोई वस्तु नहीं हो सकती। शीघ्रता करो जिससे कि तुम्हें पश्चाताप न करना पड़े। धार्मिक आंतरिकता और दृढ़ विश्वास के घोड़ों को पकड़ो। यदि आवश्यक हो तो स्वयं को कुचल डालो। किसी भी वस्तु को तुम्हारे रास्ते में बाधक न होने दो। तुम्हारा भाग्य संयोग पर निर्भर नहीं है। निश्चय और आत्मशक्ति के साथ आगे बढ़ो क्योंकि तुम्हारा लक्ष्य सत्य है। वस्तुतः तुम स्वयं ही सत्य हो। मुक्त हो जाओ। मुक्त हो जाओ। आत्मानुभूति की भाषा में बल के समान और कोई महत्त्वपूर्ण शब्द नहीं है। प्रारंभ में, अंत में, सदैव तुम बलवान बनो। स्वर्ग, नरक, देवता, राक्षस किसी से भी न डरते हुए आगे बढ़ो। तुम्हें कोई नहीं जीत सकेगा। ईश्वर स्वयं तुम्हारी सेवा करने को बाध्य है क्योंकि वह स्वयं तुम्हारे भीतर विराजमान है जिसके प्रति कि वह आकर्षित है। अतः एकत्व ही अति उदार अन्तर्दृष्टि का सार है क्योंकि

जो तुम्हारे भीतर है, जो तुम हो, वह ईश्वर है। वास्तव में तुम स्वयं ही दिव्य हो।

तत् त्वम् असि! हरि ओम् तत् सत्!

क्या तुम विश्वास करते हो? स्वयं पर विश्वास करो, यदि तुम स्वयं पर विश्वास नहीं करते तो ईश्वर पर कैसे विश्वास करोगे? तुम स्वयं अपना उद्धार करो। ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं। अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानो। आध्यात्मिक मानदण्ड से उसे मापो। यह जान लो कि तुम शरीर नहीं हो, यहाँ तक कि मन भी नहीं हो। विचार देखने का माध्यम है किन्तु लक्ष्य तो दर्शन ही है। अतः अनुभूति ही अंतिम सत्य है। अंतिम आदेश ही यह है, 'हे मानव, स्वयं को जानो!' अपने स्वरूप की अनुभूति करो। विश्वास! विश्वास!! विश्वास!!! सभी कुछ विश्वास पर निर्भर करता है। वह विश्वास नहीं जो केवल आस्था मात्र है, किन्तु वह विश्वास जो दर्शन है। संशय के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। संशय से विष के समान घृणा करना सीखो। सबसे बड़ी दुर्बलता संशय है। अपनी आत्मा में संशय करना ही वस्तुतः ईश्वर निन्दा है। किसी से भयभीत न होओ। ईश्वर से भी नहीं। क्योंकि ईश्वर प्रेम करने की वस्तु है भयभीत होने की नहीं। तुम स्वयं की आत्मा से कैसे दूर हो सकते हो? और ईश्वर तुम्हारी आत्मा ही तो है। ईश्वर के अतिरिक्त सब कुछ शून्य है और तुम ईश्वर ही हो। इसीलिए उठो जागो और जब तक लक्ष्य पर पहुँच न जाओ रुको नहीं। ब्रह्मनिष्ठ का यही उपदेश है।

ध्यान की घड़ियों में आगे आत्मा स्वयं से कहती है–यह सत्य है कि परीक्षा की घड़ियाँ आती हैं, तथा मानवीय दुर्बलताएँ बलवती हैं। किन्तु यह ज्ञान ही कि दुर्बलता ही पाप है यथासमय उसका नाश कर देगी। क्योंकि एक बार जब तुम यह जान लोगे कि यह विष है तब स्वाभाविक ही उससे घृणा करने लगोगे। जब तुम अपनी दुर्बलता को जान जाओगे तब फ़िर वह दुर्बलता न रह जायेगी। तुमने अपनी कठिनाइओं का हृदय खोल कर रख दिया और जो तुम्हारे अंतस् में है वह इसकी धाराओं को परिवर्तित कर देगा। जब तक हृदय में ईमानदारी है, तब तक, यथा समय तुम अवश्य विजयी होओगे। और अध्यवसायपूर्वक प्रार्थना करो। क्योंकि आध्यात्मिक संघर्ष में स्वयं के सतत निरीक्षण की आवश्यकता होती है। यदा कदा ऐसे क्षण आयेंगे जब तुम अपने असली स्वरूप की झलक पा सकोगे तथा दुर्बलताओं को दुर्बलता के रूप में पहचान सकोगे। उस समय ईश्वर को पुकारो और वह तुम्हारी प्रार्थना सुनकर तुम पर कृपा करेंगे।

सिद्धांत एक बात है और जीवन दूसरी। यह समझ लो कि सत्य के संबंध में तुम्हारी बौद्धिक चेतना कितनी भी आश्चर्यजनक क्यों न हो, उद्देश्य मनुष्य निर्माण ही है। अनुभूति ही सर्वस्व है। तुम्हारे अंतर का पशु प्रबल है, किन्तु आंतरिक प्रार्थना द्वारा उसे वशीभूत किया जा सकता है। प्रार्थना ही एक वस्तु है। केवल प्रार्थना ही वासना को जीत सकती है। ईश्वर के नाम से बड़ा और कुछ भी नहीं है। सतत सावधानी और सतत प्रार्थना ही तुम्हारा उद्देश्य हो और सर्वशक्तिमान के संदेश-वाहक जो कि सहायक हैं आयेंगे ओर तुम मुक्त हो जाओगे। निस्संदेह पथ बहुत लंबा है पर उसका अन्त निश्चित है। प्रार्थना गहरी प्रविष्ट होती है तथा प्रलोभन की शक्ति को नष्ट कर देती है। प्रार्थना करो! प्रार्थना करो! सतत प्रार्थना करो! सर्वदा प्रार्थना करो! विकारों के क्षणों में निराश न होओ। कभी च्युत हो भी जाओ तब भी निराश न होओ। प्रभु सदैव समीप हैं। वे

तुम्हारे कष्ट और तुम्हारी सचाई को जानते हैं। फ़िर भी उन्हें पुकारना न छोड़ो। अपनी भूलों के समय भी प्रार्थना में दृढ़ रहो। प्रार्थना की गहराइयों से ही सभी वस्तुएँ आती हैं, ईश्वर के प्रति प्रेम, आध्यात्मिक दर्शन और अनुभूति। इस धारणा को आधार बनाओ कि ईश्वर सर्वशक्तिमान हैं तथा उनका स्वभाव उस उत्तम गड़रिये के समान है जो कि अपनी भेड़ों को विशेष कर जब कि वे ग़लत रास्ते पर जाती हैं मार्गदर्शन करता है। यह जान लो कि न्याय कर्त्ता होने के पूर्व ईश्वर प्रेमस्वरूप हैं। तुम माँगो और तुम्हें दिया जायेगा। तुम खोजो और तुम पाओगे। तुम दस्तक दो और तुम्हारे लिये द्वार खोल दिया जायेगा। थोड़ी सी ही चेष्टा तो करो वह भी तुम्हें धर्म के राज्य में पहुँचा देगी।

अहो! प्रत्येक प्रार्थना जो तुम करते हो, प्रत्येक बार जब तुम अपने हृदय को ईश्वराभिमुख करते हो वह तुम्हारी साधना में सम्मिलित होगा और तुम्हें शक्ति देगा। तुम्हारी प्रार्थना तुम्हें पूर्ण बना देगी। प्रार्थना पर निर्भर करो। यही उपाय है। तुम्हारा हृदय कितना ही तमसाच्छन्न क्यों न हो प्रार्थना उसमें प्रकाश लायेगी। क्योंकि प्रार्थना ध्यान है। प्रार्थना अपने आप में दर्शन है। प्रार्थना ईश्वर के साथ संपर्क है। यह तुम्हें परम-प्रेम-स्वरूप सर्वशक्तिमान से युक्त कर देती है। यह तुम्हारी आत्मा को मानो पंख देती है। यदि तुम कठिनाई में हो तो भी उठोगे। यदि पर्वताकार खलता भी तुममें आ गई हो तथा उसने तुम्हारी आध्यात्मिकता के प्रत्येक चिह्न को ढक दिया हो तो भी प्रार्थना तुम्हें ऊपर उठा देगी। अंतःकरण के भीतर ईश्वर तुम्हारी प्रार्थना सुनेंगे और उनकी शक्ति तथा प्रेम तुम्हारे भीतर प्रगट होगी तथा तुम ईश्वर की अभयवाणी के प्रमाण स्वरूप उन्नत होओगे। और तब तुम ईश्वर की महिमा बढ़ानेवाले गीत गाओगे और तुम्हारा हृदय स्वयं प्रभु की दया की महानता की गवाही देगा; तथा वे लोग जो कभी तुम्हें जानते थे आश्चर्य से कहेंगें, 'देखो! वह एक संत हो गया है!' सचमुच उसकी कृपा ही उसका न्याय है। तथा उसकी कृपा अनंत काल तक रहती है। चाहे जितने भी प्रलोभन शत्रु रूप में तुम पर आघात करें प्रार्थना न छोड़ो। प्रार्थना के द्वारा तुम अपने स्वभाव के चारों ओर एक ऐसा क़िला बना लोगे जो अभेद्य होगा यहाँ तक कि नारकीय शक्ति भी उसका कुछ नहीं कर सकेगी। क्योंकि भगवान प्रेम

तथा अनुभूति के घनिष्ट बंधन से तुम्हें अपने साथ बाँध लेंगे जो कि प्रार्थना से उपलब्ध होता है।

हरि ओम् तत् सत्

अन्तःकरण के मौन में गुरुदेव की वाणी कहती है–

वत्स! इन्द्रियाँ सदैव आत्मा के विरुद्ध संघर्ष करती हैं। अतः सतत सावधान रहो। जीवन कितना उथला है। इन्द्रियों पर विश्वास न करो। ये सुख तथा दुःख के द्वारा विचलित होती रहती हैं। उनके ऊपर उठ जाओ। तुम आत्मा हो, शरीर का किसी भी क्षण नाश हो सकता है। सचमुच कौन उस क्षण को जानता है! इसलिए सदैव अपनी दृष्टि लक्ष्य पर स्थिर रखो। अपने मन को उन्नत विचारों से परिपूर्ण कर लो। मृत्यु के क्षणों में नहीं किन्तु जीवन के क्षणों में अपने मन को मुक्त और पवित्र रखो। तब यदि मृत्यु अकस्मात् तुम्हें अपना ग्रास बना ले तो भी तुम प्रस्तुत हो। इस प्रकार जीवन जीओ मानो इसी क्षण तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। तभी तुम सच्चा जीवन जी सकोगे। समय भाग रहा है। यदि तुम शाश्वत तथा अमर विचारों में डूबे रहो तभी भागते समय को शाश्वत बना पाओगे।

जब तुम्हारा शरीर मृत्यु को प्राप्त होगा, तब यदि इस पृथ्वी पर तुमने अपने आदर्श के अनुसार जीवन नहीं बिताया हो तो तुम्हें केवल पश्चाताप ही होगा। यह प्राणान्तक शब्द, 'यदि' लापरवाही और पश्चाताप का सूचक है! हज़ारों ऐसे जीव हैं जो पश्चातापपूर्वक कह रहे हैं, यदि शरीर रहते मैंने ऐसा किया होता तो अभी मैं अपने भगवान के समीप होता। अतः इसी क्षण अपने प्राणों को सर्वान्तःकरण पूर्वक अपने आदर्श के लिए समर्पित कर दो। कहो, 'प्रभु मुझे दर्शन दो। मुझे आंतरिकता दो। तुम्हारे लिए व्याकुलता दो।' महान् भक्तों की यह प्रार्थना प्रति दिन दुहराओ। 'प्रभु मैं तुमसे ही प्रेम करूँ, केवल तुमसे!'

मनुष्य की आत्मा अनंत है। तुम्हारे अधिकार में अनंत शक्ति है। अनुभव करो कि तुम परमात्मा के अंश हो। वह तुममें श्वास प्रश्वास ले रहा है। वह तुममें निवास करता है। वह तुममें गमन करता है। तुम्हारा अस्तित्व ही परमात्मा में है। जब तुम इस तथ्य की अनुभूति कर लोगे तब

तुम्हारे सभी भय निरस्त हो जायेंगे तथा तुम अभय की स्थिति प्राप्त कर लोगे।

और तब जीव गुरु की वाणी के उत्तर में कहता है–हे प्रभु, जगतस्रष्टा! तुम्हारा स्वभाव अनन्त है। तुम सर्वत्र विराजमान हो। प्रभु इतनी कृपा करो यह धारणा दृढ़तापूर्वक मेरे मन में सदैव बनी रहे। त्रिभुवन में तुम्हें छोड़कर और कोई आशा नहीं है। मृत्यु तथा आतंक सभी जगह हैं। सभी ओर दुःख तथा भ्रम है। मर्त्य जीवन का यही तो दृश्य है। किन्तु तुम यदि भ्रम दूर कर दो तो जहाँ मृत्यु पीछा कर रही है, जहाँ दुःख है वहाँ भी मैं तुम्हारे दर्शन करूँगा। प्रभु, भयंकर में भी मैं तुम्हारे दर्शन करूँ! हे भ्रम-विनाशक प्रभु, मेरी प्रार्थना सुनो।

और गुरु की वाणी ने उत्तर दिया:–

वत्स, प्रभु को पुकारो! सदैव प्रभु को पुकारो!! उनके और केवल उनके विषय में ही विचार करो और वह असीम शक्ति तुम्हारे चारों ओर एकत्र हो जायेगी तथा अनन्त प्रेम तुम्हारा आलिंगन करेगा। तथा प्रभु तुम्हारी आत्मा में अनुभव की वाणी बोलेंगे।

भगवान पर सच्ची निर्भरता सभी कठिनाइयों को दूर कर देती है। व्यक्ति-निर्माण की सच्ची प्रक्रिया परम प्रेम के प्रति पूर्ण समर्पण में है, यह अबाध ध्यान में प्रगट होती है। जब जीवन मिथ्या प्रतीत होता है, जब मृत्यु उपस्थित होती है, जब पीड़ा से हृदय ऐंठता है, तथा मनुष्य का संताप चूड़ान्त हो उठता है, तुम स्मरण रखने की चेष्टा करो, स्मरण रखो कि यह सब बातें शरीर की हैं; तुम आत्मा हो। प्रत्येक दिन को इस प्रकार ग्रहण करो मानो यह जीवन का अंतिम दिन है। जीवन के प्रत्येक क्षण में जप करो। प्रतिदिन अपना जीवन भगवान के चरणों में समर्पित कर दो। उनकी इच्छा की सर्वज्ञता को देखो, और तब बाघ के मुँह में भी, मृत्यु की उपस्थिति में भी, नरकद्वार में भी तुम ईश्वर को प्राप्त करोगे।

और यदि प्रभु का स्मरण ही तुम्हारा जीवन-श्रम हो तो एक महान् आनंद तथा निर्विकार शांति तुम्हें प्राप्त होगी; तथा जो बीभत्स लगता था वह सुन्दर प्रतीत होगा और जो भयंकर लगता था वह सर्वप्रेममय प्रतीत होगा। और तब उस सन्त के साथ जिसने नाग द्वारा डसे जाने पर कहा था देखो, देखो, मेरे प्रीतम का संदेशवाहक आया है, तुम भी वही कहोगे; या

उस सन्त के समान जिसने बाघ के मुँह में भी कहा था, शिवोऽहम्! शिवोऽहम्! तुम भी कहोगे, शिवोऽहम्! शिवोऽहम्! यही आत्मा की शक्ति है। यही वास्तव में उसका प्रगटीकरण है। यही दिव्यता का भाव है क्योंकि यही दिव्यता का दर्शन है।

मातृभूमि की रक्षा के लिए योद्धा तोप के मुँह में दौड़ जाता है। माँ अपने बच्चे की प्राणरक्षा के लिए अग्नि में दौड़ जाती है, गहरे जल में कूद पड़ती है, बाघ के मुँह में समा जाती है। मित्र अपने मित्र के लिए प्राण दे देता है। संन्यासी अपने आदर्श के लिए सभी प्रकार के कष्ट सहता है। तुम भी सभी प्रकार की कसौटियों को सहो, विपत्तियों का सामना करो, आदर्श का जीवन जीओ तथा ईश्वर के नाम पर निर्भीक बनो। तुम मेरे पुत्र हो। जीवन या मृत्यु में, पुण्य या पाप में, सुख या दुःख में, भले या बुरे में, जहाँ भी तुम जाओ, जहाँ भी तुम रहो, मैं तुम्हारे साथ हूँ। मैं तुम्हारी रक्षा करता हूँ। मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ। क्योंकि मैं तुमसे बँधा हुआ हूँ। ईश्वर के प्रति मेरा प्रेम मुझे तुम्हारे साथ एक कर देता है। मैं तुम्हारी रक्षा करता हूँ। मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ। मैं तुम्हारी आत्मा हूँ। वत्स! तुम्हारा हृदय मेरा निवास स्थान है।

हरि ओम् तत् सत्

(९)

ईश्वर से प्रतिध्वनित हो कर आवाज़ आई। उसने कहा, अहो! एक ऐसा प्रेम है जो किसी से नहीं डरता। जो जीवन से भी महान् है। मृत्यु से भी महान् है। मैं वही प्रेम हूँ। एक ऐसा प्रेम है जो सीमा नही जानता। जो सर्वत्र है, जो मृत्यु की उपस्थिति में है तथा जो केवल कोमलता है। भीषण के मध्य भी जो केवल कोमलता है। मैं वही प्रेम हूँ। मैं वही प्रेम हूँ। वह प्रेम जो अनिर्वचनीय मधुरता है, जो सभी वेदनाओं का, सभी भयों का, स्वागत करता है, जो सभी प्रकार की उदासीनता को दूर कर देता है, जिसकी खोज तुम कहीं भी कर सकते हो, मैं वही प्रेम हूँ। अहो! मैं उसी प्रेम का सार हूँ। और हे आत्मन्, मैं वह प्रेम हूँ। मैं तुम्हारा आत्मस्वरूप हूँ। प्रेम ही मेरा स्वभाव है। मैं स्वयं प्रेम हूँ।

ओह! यह एक सर्वग्राही सौंदर्य है। इसमें त्रुटियों और असौन्दर्य के लिए स्थान नहीं है। यह आकाश के समान विस्तृत और समुद्र के समान गंभीर है। यह सौंदर्य सुगंधित उषा तथा अरुणिम संध्या में प्रस्फुटित होता है। पक्षी के कलरव तथा बाघ की गर्जना में यह विद्यमान है। तूफ़ान और शांति में यही सौंदर्य विद्यमान है किन्तु यह इन सब से अतीत है। ये सब इसके पहलू हैं। मैं वह सौंदर्य हूँ। एक ऐसा सौंदर्य है जो सुख तथा दुख से अधिक गहन गंभीर है। यह आत्मा का सौंदर्य है। मैं वह सौंदर्य हूँ। मैं ही वह सौंदर्य हूँ। सभी प्रकार के आकर्षणों का केन्द्र मैं ही हूँ। मैं चुम्बक हूँ। दूसरी सभी वस्तुएँ लोहे के छोटे छोटे कण हैं। कोई इधर आकर्षित होता है कोई उधर। किन्तु सभी आकर्षित होने को बाध्य हैं। मैं ही वह चुम्बक हूँ। मैं ही वह सौंदर्य हूँ! मैं ही वह आकर्षण हूँ तथा आनन्द ही मेरा स्वरूप है।

अहो! एक जीवन है, जो प्रेम है, आनन्द है! मैं वही जीवन हूँ। उस जीवन को कोई सीमित नहीं कर सकता, परिमित नहीं कर सकता तथा वही अनन्त जीवन है। वही शाश्वत जीवन है और वह जीवन मैं ही हूँ। उसका स्वभाव शांति है और मैं स्वयं शांति हूँ। उसकी समग्रता में कहीं

कलह नहीं है। त्वरित आवागमन नहीं है। जीने की निर्दय चेष्टा नहीं है, प्रजनन की इच्छा नहीं है। वह अस्तिमात्र है। मैं वही जीवन हूँ। सूर्य और तारे इसे धारण नहीं कर सकते। इस ज्योति से अधिक प्रकाशमान और कोई ज्योति नहीं है। यह स्वयं-प्रभ है। इस जीवन की गहराइयों को नहीं नापा जा सकता। इसकी ऊँचाइयों को नहीं नापा जा सकता। मैं ही वह जीवन हूँ। तथा तुम मुझमें और मैं तुममें हूँ।

स्वयं निरालम्ब हो कर भी मैं सब का अवलम्बन हूँ। सभी रूपों में आत्मा मैं ही हूँ। जीवन की ध्वनि में मैं मौन हूँ। समय के ताने-बाने में बुना हुआ सब कुछ मैं ही हूँ। विचार और रूप के परे आत्मा मैं ही हूँ। मनरहित होकर भी मैं सर्वज्ञ हूँ। अरूप होकर भी मैं सर्वत्र हूँ। अधार्य होकर भी मैं सभी में विद्यमान हूँ। मैं शक्ति हूँ! मैं शांति हूँ! मैं अनंत हूँ! मैं शाश्वत हूँ। सभी विविधताओं में ऐक्य स्थापन करनेवाला सूत्र मैं ही हूँ! सभी जीवधारियों का सारतत्त्व मैं ही हूँ। सभी संघर्षरत अंशों का पूर्ण मैं ही हूँ। जन्म मृत्यु की सीमा के परे, अमर, अजन्मा, बंधनमुक्त मैं ही विद्यमान हूँ। जो मुझे पा लेता है वही मुक्त है।

सभी भ्रान्तियों के मध्य में मैं सत्य को देखता हूँ। वह दृश्य सत्य मैं ही हूँ। माया जो कि माँ का ही स्वरूप है, मैं उस मायिक शक्ति का शक्तिधर हूँ। काल के गर्भ से उत्पन्न होकर सभी रूपधारियों में मैं ही रूपधारण करता हूँ। मैं काल का भी जन्मस्थान हूँ। इसलिए शाश्वत हूँ। तथा जीव, तू वही है, जो मुझमें है, वही अन्तरात्मा! इसलिए उठो, जागो और सभी बंधनों को छिन्न भिन्न कर दो। सभी स्वप्नों को भंग कर दो। भ्रांतियों को दूर कर दो। तुम्हीं आत्मा हो। आत्मा ही तुम हो। तुच्छता तुम्हारे स्वरूप के अनुभव में बाधा दे सकती है। उठो! उठो!! और जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय न रुको। लक्ष्य जो आत्मा है, जीवन है, प्रेम है, जो कि मुक्त आत्मा का आनन्द है, ज्ञान है।

और गुरु की वाणी ने मेरी आत्मा से कहा–तुम मनुष्य हो फिर तुम्हारा विश्वास कहाँ है? क्या तुम पशु हो जो प्रत्येक ख़तरे के सामने काँपते हो! जब तक तुम देहबुद्धि को जीत नहीं लेते तब तक तुम सत्य की अनुभूति नहीं कर सकते। क्या तुम शव हो? क्या तुम भौतिक धूल की कीचड़ में सदैव नाचते रहोगे? अपनी क्षुद्रता से बाहर आओ। सामने आओ। मनुष्य बनो। यदि वह सदैव दबी रहे तो तुम्हारी दिव्यता कहाँ है? तब क्या तुम इतने महत्त्वपूर्ण हो कि संसार तुम्हारे लिए रुका पड़ा रहे। आत्मा से आत्मा को जीतो। मुक्त हो जाओ। यदि तुम अविनश्वर की उपलब्धि की चेष्टा करो तो मृत्यु तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी क्योंकि मृत्यु क्या है तुम यही भूल चुके होगे। अमरत्व तुम्हारा होगा।

समस्त संसार सत्य के प्रगटीकरण के लिए रत है। किन्तु चरित्रगठन ही इस प्रयत्न की सफलता का प्रथम सोपान है। चरित्र ही सब कुछ है। चरित्र का निर्माण करो! चरित्र कां गठन करो!! प्रत्येक मुहूर्त अपने चरित्र का गठन करो। अपनी आत्मा में अमरत्व का चिन्तन करो और तुम अमर हो जाओ गे। सत्य को अपना निवासस्थान बना लो और तब जन्म, मृत्यु, तथा जीवन के विभिन्न अनुभव तुम्हें भयभीत न कर सकेंगे।

शरीर को जाने दो। इसके प्रति आसक्ति छोड़ो। स्वयं को मन में मुक्त कर लो। काम, भय, भोजन, तथा निद्रा में सीमित पशु-चेतना को जीतना ही धर्म तथा नैतिकता है। इसे त्यागो। शव के प्रति इस आसक्ति को त्यागो। इसे शव कह कर ही संबोधित करो। सदा इसके साथ शव के समान ही व्यवहार करो। इसके ऊपर सोने का आवरण न चढ़ाओ। यह गंदा है। आत्मा ही सत्य है। आत्मा की चेतना अमर है। अमरता के विचार तुम्हें शाश्वत में ले जाते हैं। वीर बनो! साहसी बनो! वज्र के समान शक्तिशाली बनो। वत्स! यदि तुम ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहते हो तो शरीर की चिन्ता का समय नहीं है। अभी समय है, अभी अवसर है। तुम सत्य की सन्तान हो। सत्य तुम्हारा स्वभाव है। इसीलिए

आत्मा के चैतन्य में डूब जाओ। निर्भीक बनो। जीवन के सुख दुःख के ऊपर उठना सीखो। स्मरण रखो तुम आत्मा हो।

गहराई में जाओ और तुम पाओगे कि तुम शक्तिमान हो। 'अपने स्वभाव के अंतरतम में प्रवेश करो' वहाँ तुम पाओगे कि तुम अपने आध्यात्मिक प्रयत्नों में खरे हो। कुछ असफलताओं से क्या होता है? समझ लो भय और दुर्बलता भौतिक मात्र हैं। वे स्वप्न के नीड़ शरीर से ही उत्पन्न होते हैं। किन्तु तुम अपने सत्यस्वरूप में मुक्त और निर्भय हो। वत्स! शक्ति के गीत गाओ! गाओ! गाओ! तुम अमृत की संतान हो! तुम्हारा गंतव्य सत्य है। दिन के क्षण-भंगुर अनुभव विशाल मृगतृष्णा में भ्रान्तियों के अतिरिक्त और क्या हैं? या तो जीवन को तुच्छ समझो या उसे नकार दो। चाहे जैसे भी हो यह करो। आध्यात्मिकता का साक्षात्कार करो। उपाय चाहे विधेयात्मक हो या निषेधात्मक, सभी एक हैं।

और तब मेरी आत्मा में एक शांति का भाव उठा। एक महान शांति उदित हुई तथा उस शांति में अक्रिय सर्वव्यापी सर्वज्ञ महाशक्ति ने हठात् स्वयं को प्रगट किया। वह एक शक्ति थी जिसने मेरी आत्मा को शक्ति दी। मन की इस चेतन अवस्था में गुरुदेव की वाणी सुनाई पड़ी और उसने कहा, समय के भीतर तथा समय के परे शाश्वत में मैं ही हूँ। शरीरी अशरीरी सभी कुछ आत्मा ही है। हृदय में सर्वदा एकत्व है। हृदय में सर्वदा शांति है। सतह पर के तूफ़ान के नीचे, विविधता की लहरों के नीचे तथा इनसे उत्पन्न होने वाले सभी संघर्षों और संतापों के नीचे सत्य की अन्तः धारा प्रवाहित है।

तत् त्वम् असि!
तत् त्वम् असि!!

ध्यान के क्षणों में गुरुदेव की वाणी ने कहा– देखो, जैसा बाह्यजगत है वैसा ही एक अन्तर्जगत भी है। एक आत्मा का संसार है, एक नाम-रूप का संसार है। और वत्स, यदि बाह्यजगत में आश्चर्य है, रहस्य है, विशालता है, सौंदर्य है, महान् गौरव है तो अन्तर्जगत में भी अमेय महानता और शक्ति, अवर्णनीय आनंद तथा शांति और सत्य का अचल आधार है। हे वत्स! बाह्यजगत् अन्तर्जगत का आभास मात्र है; और इस अन्तर्जगत में तुम्हारा सत्यस्वरूप स्थित है। वहाँ तुम शाश्वतता में जीते हो जब कि बाह्यजगत् समय की सीमा में ही आबद्ध है। वहाँ अनन्त और अपरिमेय आनन्द है, जबकि बाह्यजगत में संवेदनायें, सुख तथा दुःख से जुड़ी हुई हैं। वहाँ भी वेदना है किन्तु अहो, कितनी आनंददायी वेदना है! सत्य का पूर्णतः साक्षात्कार न कर पाने के विरह की अलौकिक वेदना! और ऐसी वेदना विपुल आनंद का पथ है।

आओ, अपनी वृत्ति को इस अन्तर्जगत की ओर प्रस्तुत करो। आओ, मेरे प्रति उत्कट प्रेम के पंखों से उड़कर आओ। गुरु और शिष्य के संबंध से अधिक घनिष्ट और भी कोई संबंध है क्या? हे वत्स, मौन! अनिर्वचनीयता!! यही प्रेम का लक्षण है। तथा मौन की गहन गहराइयों में भगवान विराजमान हैं। सभी बाहरी झंझटों को छोड़ो। जहाँ भी मैं जाऊँ, तुम आओ। मैं जो बनूँ, तुम भी वही बनो। भगवत् पवित्रता के लिए भक्तों के हृदय विभिन्न मंदिर हैं, जहाँ सुगंधित धूप की तरह विचार ईश्वर की ओर उठते हैं। तुम जो कुछ भी करते हो उसका अध्यात्मीकरण करलो। रूप अरूप सभी में ब्रह्म का, देवत्व का दर्शन करो। ईश्वर से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है।

अन्तर्जगत की अन्तरतम गुहा में जिसमें व्यक्ति उत्कट प्रेम या कातर प्रार्थना द्वारा प्रविष्ट होता है, वहाँ अनुभूति में आध्यात्मिक जगत के ब्रह्माण्ड के बाद ब्रह्माण्ड भरे हुये हैं तथा ईश्वर सर्वदा सन्निकट हैं। वह भौतिक अर्थ में निकट नहीं किन्तु आध्यात्मिक अर्थ में हमारी आत्मा के

भी आत्मा के रूप में। वे हमारी आत्मा के सार तत्त्व हैं। वे हमारे सभी विचारों तथा अंतरतम में छिपे अति गोपन आकांक्षाओं के भी ज्ञाता हैं। स्वयं को समर्पित कर दो। प्रेम के लिए प्रेम! जितना अधिक तुम अंतर में प्रविष्ट करते हो उतना ही तुम मेरे निकट आते हो क्योंकि मैं अन्तरतम का निवासी हूँ। क्योंकि मैं ही वह चुम्बक हूँ जो तुम्हारी अनुभूति तथा आत्मा की महिमा को प्रगट करता है। मैं आत्मा हूँ, विचार या रूप से अछूती आत्मा! मैं अभेद्य, अविनश्वर आत्मा हूँ। मैं परमात्मा हूँ। ब्रह्म हूँ।

गुरुदेव की वाणी कितनी आश्चर्यजनक है! मेरी आत्मा पुकार उठती है। हे महाभाग, आप स्वयं ईश्वर हैं। आप जिसका उपदेश देते हैं आप स्वयं वही हैं। आप विश्व की आत्मा हैं। आप सर्वस्व हैं। यद्यपि आपकी माया विविध रूप का आभास देती है तथापि आप स्वयं एकम् अद्वितीयम् हैं। आपके एकत्व की महिमा महान् है, क्योंकि आत्मा एक है। आत्मा सारभूत है जिसमें अंश या विभाग नहीं है। आत्मा एक ही ज्योति है जो विभिन्न रंगों के काँचों से देखी जा रही है। हे गुरुदेव, मुझे कृपया उस जीवन में ले चलिये जो आपका जीवन है। आप ब्रह्मा हैं! आप विष्णु हैं! आप सदाशिव हैं! आप ब्रह्म हैं! परम् ब्रह्म हैं!!

हर हर बम बम महादेव!

उसके पश्चात मेरी आत्मा मानो सातवें आसमान में पहुँच गई। और मैंने मनुष्य की दिव्यता के दर्शन किए। मनुष्य की दुर्बलता के महत्त्व को भी समझा। मैंने देखा वहाँ सभी कुछ दिव्य है। तथा इस दिव्य ज्योति के भीतर मैंने देखा कि इस अन्तर्जगत में अनुभूति के पर्वत पर गुरुदेव मानो दूसरे कृष्ण हो कर विराजमान हैं। गहन! समय से गहन! आकाश से भी अधिक सर्वव्यापी हैं ध्यान राज्य का यह अन्तर्जगत। वहाँ अंधकार हो ही नहीं सकता। क्योंकि वहाँ केवल ज्योति है। वहाँ अज्ञान हो ही नहीं सकता क्योंकि वहाँ केवल ज्ञान है। वहाँ मृत्यु का वश नहीं चलता। अग्नि जला नहीं सकती, जल भिगा नहीं सकता, वायु सुखा नहीं सकती। वह उस पुराणं पुरुष का राज्य है। जीवन की सभी छलनाओं के पार असीम और कूटस्थ है।

और उस महिमा में अंतरतम से बोलते हुये गुरुकी वाणी ने कहा वत्स! यह तुम्हारी विरासत है। अनन्तशक्ति तुम्हारी है। जब सभी शक्ति

तुम्हारी है तब क्या तुम दुर्बल हो सकते हो? इन्द्रियों के दिखावे से तुम संतुष्ट नहीं रह सकते। इस बाह्य जगत् की तड़क भड़क के पीछे मृत्यु तथा विस्मृति ही है। जब मृत्यु आती है यह शरीर शव हो जाता है किन्तु आत्मा सदैव मुक्त है। वह अशरीरी है। साक्षी है, क्योंकि शरीरों का नाश हो सकता है किन्तु आत्मा अनश्वर है।

मेरी आत्मा ने गुरुदेव से निवेदन किया–महाभाग, कितना अद्‌भुत है! वहाँ मृत्यु नहीं है!

और तब गुरुदेव ने कहा–वत्स! वहाँ वासनासंभूत जीवन भी नहीं है। क्योंकि लोग जिसके भूखे हैं वह संसार कीच ही तो है। दूषित वासनाओं में आनंद लेनेवाले लोग कीचड़ में सने शरीर में आनंद से लोटने वाले बैल के समान ही तो हैं, उनके लिए यह पथ बहुत लम्बा है क्योंकि इच्छाओं के ताने बाने से बनी माया उनके पथ में आड़े आती है। तुम उसके परे जाओ। तुम्हारा समय आयेगा। ऊपर की ओर देखो। वहाँ अनन्तज्योति है। ऊपर देखो और वह ज्योति तुम्हारे मन की अपारदर्शिता को अवश्य भेद जायेगी।

इन शब्दों को सुन कर मुझे स्मरण हो आया कि चैतन्य ही आत्मा का स्वरूप है तथा मुक्ति ही लक्ष्य है। और वह लक्ष्य यहाँ और अभी है, मरणोपरान्त नहीं; तथा जीवात्मा का भाग्य निश्चित है और वह है आत्म-साक्षात्कार, जहाँ समय मिट जाता है। जहाँ भौतिक और मर्त्य चेतना विलुप्त हो जाती है। जहाँ ज्योति जो कि जीवन है, सत्य है, शांति है, वह प्रकाशित होती हैं। जहाँ सभी स्वप्न समाप्त हो जाते हैं, वासनायें असीम अनुभूति में विलीन हो जाती हैं। जो कि महत् विस्तार का क्षेत्र है। उस अनन्त की अनुभूति के लिए, समय का अवसान कर देने के लिए, इन्द्रिय प्रभूत कल्पनाओं की समाप्ति के लिए, अनंत की मुक्ति के लिए ही यह अनुभूति है।

हरि ओम् तत् सत्

(१२)

वह वाणी जिसका निवास मौन में है, ध्यान के क्षणों में उसने मेरी आत्मा से कहाः–

वत्स! गंभीर! गहन गम्भीर शांति में आओ। व्यक्तित्व के कोलाहल के परे, उसके विविध अनुभवों के परे महान् शांति में आओ। वासनाओं या इच्छाओं की आँधी से सतह पर ही विक्षुब्ध न होओ!। यद्यपि घने बादल छा जाते हैं किन्तु उनके ऊपर सूर्य चमकता ही रहता है। शांति के क्षणों में ही हमारा हृदय दिव्यानन्द में सर्वोत्तम स्पन्दित होता है। सर्वव्यापी प्रेम के सम्मुख स्वयं को अनावृत कर दो। वह स्थिरता कितना संगीतमय है। वह कैसी शांति प्रदान करता है। ओ! वह अनन्त स्थिरता! अनन्त शांति!!

एक भी सत् विचार, आध्यात्मिक विचार, कभी नष्ट नहीं होता। इसलिए तुम समय की सीमा के बाहर चले जाओ। वहाँ महत् विचारों पर मनन करो तथा उसमें तुम्हारी आत्मा अनंत को पाने की इच्छा करे। तुम्हारे मन में ही तुम्हारे संसार का अस्तित्व है। तथा तुम समय के प्रवाह के भीतर भी अनन्त को प्रगट कर सकते हो। अपने विचारों के द्वारा तुम आकाश की सीमा को लांघ सकते हो।

आत्मा मुक्त है उसे कोई बाँध नहीं सकता। तुम आओ या जाओ, तुम कुछ करो या न करो, यह सब क्या है? ये सब जीवन स्वप्न की घटनाएँ मात्र हैं। ये सब काल प्रवाह में बहती धारायें मात्र हैं जब कि आत्मा शाश्वत है। ओह! इस ज्ञान के साथ कितनी शक्ति, कितनी उच्चता, कितनी अपरिमेय विशालता का बोध जागता है।

शांति गहरी है! अतल गहरी!! वह अपरिमेय है!! द्वन्द्रिय तथा विचारों की सभी कल्पनाओं को मिटा दो। वे प्रकाश के प्रत्यावर्तन मात्र हैं। तुम स्वयं प्रकाश में लीन हो जाओ।

उस वाणी ने और भी कहा–

आत्मा में जीवात्मा से भिन्न बोध नहीं है। वह असीम शाश्वत तथा

पूर्ण मुक्त है। वह विविधता रहित ऐक्य है। आत्मा के राज्य में मैं, तुम, वह आदि भेद के लिए कोई स्थान नहीं है। वह तत् मात्र है। ओम् तत् सत्। अतुलनीय, अनिर्वचनीय। उस आत्मा को कौन जानता है! वास्तव में वही तुम्हें जानता है। असीम में समाहित हो जाने की आकांक्षा, मुक्ति की इच्छा ही वास्तविक प्रेम है। उस महत् शांति की इच्छा ही सच्चा प्रेम है। यह विचलित नहीं होगा। यह शांतिपूर्वक किन्तु समग्र रूप में बढ़ता है। यह अजेय है। यह लक्ष्य पर पहुँच कर ही रहता है। जिसमें सभी देवी देवता विलीन हो जाते हैं, जहाँ ध्वनि समाप्त हो जाती है, जिसमें सभी रूप समा जाते हैं, जहाँ विचार अविचार हो जाते हैं, जहाँ जन्म और मृत्यु का अस्तित्व नहीं रहता उसे ही आत्मा जानो। जहाँ संघर्ष समाप्त हो जाते हैं, जहाँ अनुभूति है, जहाँ सभी सापेक्ष विचार मिट जाते हैं, जहाँ सौंदर्य, पवित्रता, पाप, आतंक, शुभ, अशुभ सभी का भेद समाप्त हो जाता है, जहाँ ध्यान में मन सर्वज्ञ हो जाता है, उसे ही आत्मा जानो।

वत्स! सभी ऊँचाइयों के परे एक ऊँचाई है, महान् देवताओं के परे भी एक दिव्यता है। अविनाशी ही सब का आधार है। सभी तिरोहित हो जाते हैं। सभी मिट जाते हैं, केवल आत्मा ही सर्वदा रहता है।

और जब वह वाणी शांत हुई तब मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरी आत्मा विशालता में उठ गई। तब मैं नहीं था वहाँ केवल ज्योति थी! ज्योति!!

जब आत्मा अन्तरतम की शांति मे उठी तब उस वाणी ने कहा, अच्छाई, पाप तथा दोष से अधिक गहरी है। विश्व का ताना बाना, उसका सारतत्त्व अच्छाई ही है। असीम अतुलनीय अच्छाई। जहाँ ईश्वर है वहाँ अशुभ मिट जाता है। अशुभ आभास मात्र है, सत्य नहीं। आत्मसमुद्र की गहराइयों में ज्ञान और सत्य की अटल चट्टानें हैं। इन चट्टानों के सामने सभी भूल, सभी अंधकार तथा सभी दोष निश्चय नष्ट हो जाते हैं। यह ठीक है कि सतह पर इच्छाओं की आँधी के तुमुल शब्द हो सकते हैं, उत्तेजित वासनाओं के तूफ़ान हो सकते है, दोष तथा अंधकार की घड़ियाँ हो सकती हैं, किन्तु अनुभूति! अनुभूति का एक क्षण! सर्वशक्तिमान है। वह सभी प्रकार के दोषों को दूर कर देता है। वह सूर्य के प्रकाश के समान है। वह सभी अंधकार को छिन्नभिन्न कर देता है। अतः अंधकार के क्षणों में भी इस ज्योति का स्मरण करो। यहाँ तक कि दोष होने पर भी प्रभु का नाम स्मरण करो! प्रभु तुम्हारी प्रार्थना सुनेंगे। वे तुम्हारी सहायता के लिए दूत भेजेंगे। आत्मा की शक्ति से बड़ी और कोई शक्ति नहीं है। हमारे अन्तरतम में एकीभूत दिव्यता का अनंत प्रवाह है। उस दिव्यता की एक झलक से ही यह विविधताबोध जो दोषों तथा अज्ञान का निवास स्थान है तिरोहित हो जायेगा। मौलिक रूप में तुम मुक्त हो, शुद्ध हो, दिव्य हो। विश्व की सभी शक्तियाँ तुम्हारे अधीन हैं।

जब तुम मुक्त हो तो भी क्या तुम मुक्ति के लिए संघर्ष करोगे? तुम्हारा लक्ष्य आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना होना चाहिये। उस सौंदर्य शिखा की एक किरण मात्र का दर्शन दोष की सूक्ष्मतम रेखा को भी नष्ट कर देता है, मिटा देता है। जान लो कि तुम शक्ति तथा शाश्वत ज्योति के ही बने हुए हो। तुम्हारा जीवन न इहलोक में है न परलोक में, वह तो अनंत में अवस्थित है। गहरे अर्थ में यह पाप की धारणा अज्ञान ही तो है। यह एक स्वप्न है। पाप का स्वभाव दुर्बलता है। तुम शक्तिशाली बनो।

वह, जो तुम हो, उसकी एक झलक और तुम वही ज्योतिःस्वरूप सर्वशक्तिमान हो।

तब मैंने सुना वह वाणी मानो प्रार्थना के स्वर में कह रही है–हे इन्द्रिय और विचारों के निर्माता! जिसका तुमने निर्माण किया है उसे नष्ट कर दो। भय, काम, आहार, निद्रा तथा उससे उठनेवाले विचारों के पिंजरे में बद्ध मानो तुमने इच्छापूर्वक स्वयं को अज्ञान के घनत्व से ढक लिया है और स्वप्न देखे जा रहे हो। तुम्हारे स्वयं का अज्ञान ही तुम्हारा अभिशाप है। सभी स्वप्नों को भंग कर दो। सुख तथा दुःख की धारणाओं को नष्ट कर दो और तब देहात्म-बुद्धि की यह लौह अर्गला छिटक कर एक ओर गिर जायेगी। इसलिये हमारे सामने जो कार्य है वह विलक्षण है। माया का जाल मकड़ी के जाले के समान पतला है किन्तु वह वज्र के समान कठोर भी है। हे जीव, स्वयं का उद्धार करो। इस घर को तुम्हीं ने बनाया है, तुम्हीं उसे तोड़ो और इस घर को तोड़ने की प्रक्रिया है आत्मसाक्षात्कार। यह एकत्व की दैवी चेतना से संबंधित है। क्या सूर्य, तारे, नहीं! आकाश स्वयं भी तुम्हारे स्वरूप को निगल सकेगा? आत्मा का तुम्हारे साथ एकत्व है। अज्ञान से, अंधकार से, बाहर आ जाओ! हे जीव! यह अज्ञान तुम्हारा स्व-आवृत है। सुख से पीड़ा अच्छी है, आनंद से दुःख अच्छा है, क्योंकि ये हमारे विचारों तथा बुद्धि को वह रूप देते हैं जो कि आत्म-साक्षात्कार का उपयुक्त साधन बन जाता है। भीषण के प्रेमी बनो। यद्यपि भीषण के दर्शन में तुम मृत्यु को देखोगे किन्तु वस्तुतः तुम अमरत्व का भी दर्शन करोगे। जीवन अधिक से अधिक स्वप्न है। परम तत्त्व तो जीवन के परे है। अन्त में सभी जगह एकत्व है! दिव्य सर्वव्यापी एकत्व! रश्मियाँ भिन्न भिन्न हो सकतीं हैं, किन्तु सूर्य वही एक है तथा सूर्य ही रश्मि है और रश्मि ही सूर्य है। तुम सूर्य हो तथा अंधकार भी आलोक है।

यह सुन कर मेरी आत्मा ध्यान के और भी गहन से गहनतर स्तर में पहुँच गई और मैं सचमुच जान गया कि किरण ही सूर्य है।

ध्यान के क्षणों में पुनः यह कहते हुए गुरुदेव उपस्थित हुए–

सभी शब्दों के पार मौन में, शाश्वत शांति में तुम्हारी आत्मा का निवास है। इन्द्रियों के तुमुल कोलाहल से दूर, जीवन की यातना और दुःखों से दूर, पाप और संताप की भावना से दूर तथापि उन सभी के मध्य

दिव्यता का निवास है जो कि अस्तिमात्र है। संसारस्वप्न के ताने बाने कितने आश्चर्यजनक है! किन्तु स्वप्नद्रष्टा उससे भी अधिक आश्चर्यजनक है। हे आत्मन्! तुम अमर, मृत्यु की सीमा के पार, जघन्य कलुषों के मध्य भी निष्कलंक हो। तुम्हारी जड़ें दिव्यता में समायी हुई हैं। शुभ और अशुभ–ये विचारों के मापदण्ड हैं। तुम विचारों के परे सर्वोपरि ज्योतिःस्वरूप हो। तुम्हारे स्वरूप का प्रताप सभी वस्तुओं के पार पहुँचा हुआ है। तुम अतुलनीय, शब्दातीत हो। हे स्वर्गीय दिव्यज्योति! हे देव, ध्यान और अनुभूति के शीर्ष मुकुट! कौन तुम्हें पापी कहेगा! या महात्मा कहेगा! कौन तुम्हारा वर्णन कर सकेगा या तुम्हारे विषय में सोच भी सकेगा। सभी में एक, सभी में समान, तुम वही अमर आत्मा हो। मर्त्यजीवन के शब्दों में कौन तुम्हें व्यक्त कर सकता है? तुम उन सभी के परे अमर्त्य हो। और यह जान रखो कि तूफ़ानी विचारों के उपद्रवों के बीच भी उन सब को देखने वाला एक मौन द्रष्टा है। उसके प्रकाश को इन्द्रियों का तुच्छ कच्छ-प्रकाश कभी मंद नहीं कर सकता न ही उसकी शांति को जीवन के सभी कलह दबा सकते हैं। वह चन्द्र, सूर्य, तारों से परे कूटस्थ तथा विचारों की सीमा के बाहर है। वही आत्मा है! आत्मा वही है!! इन्द्रियों के युद्ध में विजयी वही है।

अज्ञान के पहाड़ कितने भी बड़े क्यों न दीख पड़ते हों, पाप और संताप की गहराइयाँ कितनी भी गहरी क्यों न हों, उसमें सभी ऊँचाई और गहराइयाँ समा जाती हैं। उन सभी विविधताओं को जानों और मुक्त हो जाओ।

और मेरी आत्मा में ये शब्द आये:–

मैं सर्वदा तुम्हारे पास हूँ। जब तुम्हारे पापों के जाल कसने लगें तथा गहन अंधकार में कष्ट पा रहे होओ तब यह जान रखो कि वहाँ मैं भी तुम्हारे साथ तुम्हारे महापराधों के कष्टों को भोगने में सहभागी हूँ। तुम्हारी अन्तरात्मा के कार्यों को भली भाँति जानने के कारण मैं तुम्हारी अन्तरात्मा के संबंध में सजग हूँ। मैं, जो सर्वव्यापी हूँ, उससे तुम कुछ भी नहीं छिपा सकते, अपने गोपन विचारों का अत्यल्प अंश भी नहीं। मैं तुम में हूँ। मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ। मेरे बिना न तो तुम हिल ही सकते हो, न ही साँस ले सकते हो। स्मरण रखो मैं तुम्हारी आत्मा हूँ। तुम

जहाँ जाते हो वहाँ मैं जाता हूँ, तुम जहाँ रुकते हो वहाँ मैं रुकता हूँ। आओ मेरे हृदय से अपना हृदय मिला लो, उसे अपना बना लो, तब सब ठीक हो जायेगा। तुम्हारी हृदय-गुहा की छाया और शांति में मेरा निवास है।

अब जाओ संसार में निकल पड़ो और मेरी वाणी का इतना व्यापक प्रचार करो जितना व्यापक कि आत्मा है, क्योंकि वही उसका जीवन है। मेरा सर्वसमन्वित प्रेम तथा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ है। तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम माँ के प्रेम के समान है। जैसा एक कबूतरी का प्रेम अपने नवजात बच्चों के लिए होता है, वैसा ही प्रेम मेरा तुम्हारे प्रति है। जब कष्ट आते हैं या विपत्तियाँ तुम्हें भयभीत करती हैं तब स्मरण रखना कि मैं तुम्हारा सहायक हूँ! तुम्हारी आत्मा का प्रेमी हूँ।

जब ये शब्द समाप्त हुए तब मैंने समझ लिया कि यह गुरुदेव की वाणी थी जिसने मेरे सभी पापों को धो दिया था और तब मैं कह उठा–मेरे प्रभु के सान्निध्य में, उनसे ऐक्यबोध में ध्यानानन्द की कितनी तीव्रता होती है यह मेरा हृदय जानता है। अहो! उन दिव्य ईश्वरीय विचारों का प्रवाह कितना मधुर है! और ऋषियों के साथ मैं भी स्वयं से कह उठा! सच्चिदानन्द-सागर में कूद पड़ो! ओ मूर्ख, ईश्वर-सागर में कूद पड़ो!

जब मेरा मन ध्यान की शांति में पहुँचा तब श्री गुरुदेव की वाणी ने कहा–

वत्स! क्या मैं तुम्हारी दुर्बलताओं को नहीं जानता हूँ? फिर तुम चिन्ता क्यों करते हो? क्या जीवन परीक्षा और क्लेशों से आक्रान्त नहीं है? पर तुम मनुष्य हो। मन में कापुरुषता न आने दो। स्मरण रखो तुम्हारे भीतर सर्वशक्तिमान आत्मा है। तुम जो होना चाहो वही हो सकते हो। इसमें केवल एक ही बाधा है और वह तुम स्वयं हो। शरीर विद्रोह करता है, मन चञ्चल हो उठता है, किन्तु लक्ष्य के संबंध में निश्चित रहो। क्योंकि अन्ततः आत्मा की शक्ति के आगे कोई नहीं टिक सकता। यदि तुम स्वयं के प्रति निष्ठावान हो, यदि तुम्हारे हृदय की गहराइयों में समग्रता है तो सब कुछ ठीक है। तुम पर कुछ भी पूर्णतः या आंशिक रूप में अधिकार नहीं कर सकता। हृदय तथा मन के खुलेपन का विकास करो अपने संबंध में मुझसे कुछ न छिपाओ। अपने मन का उसी प्रकार अध्ययन करो मानो वह तुमसे भिन्न कोई वस्तु है। जिससे तुम्हारा हार्दिक संबंध है उससे अपने मन की बातें अकपट भाव से कहो क्योंकि निष्ठावान व्यक्ति के सामने स्वयं नरक के द्वार भी नहीं टिक सकते। दृढ़ निष्ठा ही आवश्यक वस्तु है।

अन्ततः शरीरबोध के कारण ही तो तुम्हारी अधिकांश भूलें होती हैं। शरीर को मिट्टी के एक लोंदे के समान समझो। इसे अपनी इच्छाशक्ति के अधीन करलो। चरित्र ही सब कुछ है और चरित्र का बल इच्छाशक्ति ही है। यही आध्यात्मिक जीवन का संपूर्ण रहस्य है। यही धार्मिक साधना का अर्थ है। सभ्यताओं को देखो, इन्द्रियशक्ति तथा इन्द्रियजन्य यथार्थताओं की तड़क भड़क पर मनुष्य कितना गौरवान्वित होता है, किन्तु उसके मूल में कामवासना और भोजनलिप्सा के अतिरिक्त और क्या है? अधिकांश लोगों के मन इन दोनों सर्वग्राही वृत्तियों से ही तो बने हैं। हम शव को फूलों से ढकते हैं किन्तु शव तो शव ही है। अतः संसार

जिसे महान् कहता है अमृतपुत्र को गहराई से उसका अध्ययन करने दो। क्योंकि अत्यन्त कायिक और भौतिक होने के कारण भीतर यह सड़ा हुआ दुर्गन्धयुक्त ही है। संसार के नाशवान पदार्थ तथा उनके आकर्षणों से कोई संबंध न रखो। शरीर जिन मुखौटों से अपने दोष ढकता है उन्हें फाड़ डालो। उस अन्तर्ज्ञान में प्रवेश करो जहाँ तुम यह जान लेते हो कि तुम इन नाशवान वस्तुओं के बने नहीं हो। तुम आत्मा हो। जान लो, साम्राज्यों के उत्थान पतन, संस्कृति और सभ्यताओं की प्रवृत्तियों का, उच्च आध्यात्मिक चेतना के क्षेत्र में कोई विशेष महत्त्व नहीं है। समझ लो, वह जो अदृश्य है वही महान् है, वस्तुतः वही स्पृहणीय है।

अपरिग्रह की संतान बनो। पवित्रता की तीव्र इच्छा जागृत करो! काम कांचन ही सांसारिकता के ताने बाने हैं। इन्हें अपने स्वभाव से निर्मूल कर दो। इनकी सभी प्रवृत्तियों को विषवत् समझो। अपने स्वभाव से सभी मलिनताओं को निकाल फेंको। अपनी आत्मा की सभी अपवित्रताओं को धोकर साफ कर डालो। जीवन जैसा है, उसे उसी रूप में देखो और तब तुम समझ पाओगे कि यह माया है। यह न तो अच्छा है और न ही बुरा। किन्तु यह सर्वथा त्याज्य वस्तु है, क्योंकि यह शरीर तथा शरीरबोध से ही उत्पन्न होता है। अपने उच्च स्वभाव के प्रत्येक शब्द को ध्यान पूर्वक सुनो। अपनी आत्मा के प्रत्येक सन्देश को आग्रहपूर्वक पकड़ो। क्योंकि आध्यात्मिक अवसर एक अत्यन्त विरल सुयोग है तथा जब यह आध्यात्मिक वाणी मन के मौन में प्रवेश करती है उस समय यदि तुम इन्द्रिय-लिप्साओं में व्यस्त रहो और इसे न सुनो तो तुम्हारा व्यक्तित्व उन आदतों के पंजे में पड़ जायेगा जो तुम्हारे विनाश के कारण होंगे। तुम्हारे लिए मेरा केवल एक ही सन्देश है:– स्मरण रखो कि तुम आत्मा हो। तुम्हारे पीछे शक्ति है। निष्ठावान होना मुक्त होना है। अपने आध्यात्मिक उत्तराधिकार के प्रति प्रमाणिक रहो क्योंकि प्रमाणिक होना मुक्त होने के समान है। तुम्हारा प्रत्येक पद आगे बढ़ने की दिशा में ही हो तथा जैसे जैसे तुम जीवन के राजपथ में बढ़ते जाओगे वैसे वैसे ही तुम अधिकाधिक अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करते जाओगे। यदि तुम्हारे पीछे प्रामाणिकता है तो तुम सभी व्यक्तियों का सामना कर सकते हो। स्वयं के प्रति ईमानदार बनो तब तुम्हारे शब्द सत्य की ध्वनि से गुंजित

होंगे, तुम अनुभूति की भाषा बोलोगे तथा तुम वह शक्ति प्राप्त करोगे, जो दूसरों को भी पूर्ण बना देगी।

प्रत्येक व्यक्ति अपने चरित्र की शक्ति विकीर्ण करता है। स्वयं को छिपा नहीं सकता। यदि किसी व्यक्ति में कोई शारीरिक विकृति है तो सभी लोग उसे देख पाते हैं। उसी प्रकार यदि तुम में आध्यात्मिक विकृति होगी तो सभी लोग उसे अन्तःप्रेरणा से अपने आप जान लेंगे। क्योंकि जब तुम आत्मा की बात करोगे तब लोग यह अनुभव करेंगे कि तुम जो कह रहे हो वह तुम्हारे हृदय की बात नहीं है। तुम उन्हें आध्यात्मिक जीवन का कुछ भी नहीं दे पाओगे क्योंकि तुम स्वयं आध्यात्मिक जीवन में प्रतिष्ठित नहीं हो, न ही तुम्हारे पास आध्यात्मिकता ही है। अतः यदि तुम परमात्मा के सन्देशवाहक होना चाहते हो तो आत्मसुधार के प्रयत्न में लग जाओ। अपनी मूल प्रवृत्तियों का अध्यात्मीकरण करो। निष्ठावान बनो। किन्तु मैं तुमसे कहूँगा कि अपनी अनुभूतियों को गोपन रखो। भैंस के आगे बीन न बजाओ। यदि तुम आत्मा की आश्चर्यजनक अवस्थाओं का अनुभव करते हो तो मौन रखो जिससे कि तुम्हारी बातचीत से उस अनुभूति की तीव्रता कम न हो जाय। तुमने जो उपलब्ध किया है उस पर विचार करो। सभी चीज़ो के साथ आत्मा की शांति में प्रवेश करो। कृपण व्यक्ति जिस प्रकार अपने धन की रक्षा करता है उसी प्रकार अपनी अनुभूतियों और ज्ञान की रक्षा करो। स्वयं का संग्रह करो। और जब तुम कुछ समय तक मौन का अभ्यास कर चुकोगे तब जिस तत्त्व से तुम्हारा हृदय परिपूर्ण हो गया है वह छलकने लगेगा और तब तुम मनुष्य के लिए संपत्ति तथा शक्ति हो उठोगे।

तपस्या का एक प्रकार है जो मैं तुम्हारे लिए निर्दिष्ट करूँगा। भयंकर का ध्यान करो क्योंकि वह सर्वत्र है। एक सन्त ने ठीक ही कहा है, जिस किसी वस्तु का तुम स्पर्श करते हो वह दुःख ही है। इसे निराशा के अर्थ में न लो किन्तु एक विजयी के अर्थ में ग्रहण करो। सभी आध्यात्मिक अनुभवों में किसी न किसी रूप में तुम इस भयंकर की पूजा पाओगे। वस्तुतः यह भयंकर की पूजा नहीं है। जो इन्द्रियों में बद्ध है उसी के लिये यह भयंकर है। सुखकर एवं भयंकर शब्दों का अर्थ उसी व्यक्ति के लिए है जो कि देहबुद्धि का क्रीतदास है किन्तु तुम इससे ऊपर उठ चुके हो, कम

से कम विचारों और आकांक्षाओं में, अनुभूति में न सही। भयंकर का ध्यान करने से तुम निश्चित रूप से इन्द्रियजनित वासनाओं को जीत सकोगे। तुम आध्यात्मिक जीवन का आलिंगन करोगे। तुम शुद्ध और मुक्त हो जाओगे। तथा मैं, जो जीवन के दूसरे छोर पर हूँ उससे तुम अधिक एकत्व का अनुभव करते जाओगे। जीवन को शरीर मात्र के रूप में न देखो, मानसिक रूप में उसका अध्ययन करो। आध्यात्मिक रूप में उसकी अनुभूति करो तब आध्यात्मिक जीवन का समस्त तात्पर्य तुम्हारे सामने स्पष्ट हो जायेगा और तब तुम्हें ज्ञात होगा कि संतगण क्यों अपरिग्रह तथा पवित्रता से प्रेम करते हैं तथा युद्ध या पलायन द्वारा ऐसी सभी वस्तुओं से बचते हैं जिसमें काम कांचन का रस है।

इतना पर्याप्त है। जो मैंने कहा है उसका पालन करो। इस पर तब तक विचार करो जब तक कि तुम्हारा स्नायुजाल उसे ग्रहण न कर ले तथा इन विचारों का सौरभ एवं उसकी उदात्तता और दिव्यानन्द तुम्हारी नाड़ियों में बहने न लगे। अपने व्यक्तित्व का नवीनीकरण करो तथा स्वयं को पूर्ण कर लो।

ध्यान की गहराइयों में जब सब कुछ शांत था तब श्री गुरुदेव ने उपस्थित हो कर कहा:- वत्स! शक्ति जो कि जगन्माता का स्वरूप है उस पर ध्यान करो, और तब सभी भयों से ऊपर उठ कर, यह शक्ति प्रेरित करती है और तब तुम शक्तिसे परे स्वयं जगन्माता की सत्ता में चले जाओगे जो कि मात्र शांति है। जीवन की अनिश्चितताओं से भयभीत न होओ यद्यपि भयंकर के सभी रूप अपने को सहस्र गुण करते प्रतीत होते हैं, किन्तु स्मरण रखो उनका प्रभाव केवल भौतिक जगत पर ही होता है, आध्यात्मिक आत्मा पर नहीं। ठीक ठीक यह जान कर कि आत्मा अविनाशी है, अटल एवं दृढ़ रहो। आत्मा को ही अपना अवलंबन बनाओ। सत्य जो कि सहज तथा सब में समान है उसके अतिरिक्त और किसी वस्तु में विश्वास न करो। तुम भौतिक जगत के विक्षोभ तथा प्रलोभनों में समान रूप से अविचल रह पाओगे। जो आता जाता है वह आत्मा नहीं है। स्वयं को आत्मा के साथ एक करो, शरीर के साथ नहीं। दृश्य जगत् की वस्तुओं में ही अस्थिरता का प्रभुत्व है। शाश्वत द्रष्टा के जगत में स्थिरता का अस्तित्व है जहाँ विचारों तथा इन्द्रियों से मुक्त आत्मा का चैतन्य ही राज्य करता है।

जो सत्य है वह महासमुद्र के समान अपरिमेय है। उसे कोई भी वस्तु न तो बाँध सकती है और न ही सीमाबद्ध कर सकती है। आध्यात्मिकता का कूलरहित समुद्र जो कि अनुभूति की ऊँचाइयों में आत्मा में आत्मा के रूप में ही भासता है उसे व्यक्त जगत के विधेयों से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

संसार के दुःख सीधे इच्छाओं के अनुपात में ही है। इसलिए अंध आसक्ति न रखो। स्वयं को किसी से बाँध न लो। परिग्रह की इच्छा न करो वरन् स्वयं में अवस्थित होने की दृढ़ इच्छा करो। क्या कोई भी संग्रह तुम्हारे सत्यस्वरूप को संतुष्ट कर सकेगा? क्या तुम वस्तुओं से बद्ध हो जाओगे? नग्न हो इस संसार में तुम आते हो तथा जब मृत्यु का बुलावा

आता है तब नग्न ही चले जाते हो। तब फिर तुम किस बात का मिथ्या अभिमान करते हो? उन वस्तुओं का संग्रह करो जिनका कभी नाश नहीं होता। अन्तर्दृष्टि का विकास अपने आप में एक उपलब्धि है। अपने चरित्र को तुम जितना अधिक पूर्ण करोगे उतना ही अधिक तुम उन शाश्वत वस्तुओं का संग्रह कर पाओगे जिनके द्वारा यथासमय तुम आत्मा के राज्य के अधिकारी हो जाओगे।

अतः जाओ इसी क्षण से आंतरिक विकास में लगो, बाह्य नहीं। अनुभूति के क्रम को अन्तर्मुखी करो। इन्द्रियासक्त जीवन से विरत होओ। प्रत्येक वस्तु का अध्यात्मीकरण करो। शरीर को आत्मा का मंदिर बना लो तथा आत्मा को दिन दिन अधिकाधिक अभिव्यक्त होने दो। और तब अज्ञानरूपी अंधकार धीरे धीरे दूर हो जायेगा तथा आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश धीरे धीरे फैल उठेगा। यदि तुम सत्य का सामना करो तो विश्व की सभी शक्तियाँ तुम्हारे पीछे रहेंगी तथा समन्वित रूप से तुम्हारी उन्नति के लिए कार्य करेंगी। जैसा कि भगवान बुद्ध ने कहा, 'तथागतगण केवल महान शिक्षक हैं, प्रयत्न तो तुम्हें स्वयं करना होगा'। शिक्षक केवल ज्ञान दे सकते हैं। शिष्य को उसे आत्मसात् करना होगा और इस आत्मसात् करने का तात्पर्य है चरित्र निर्माण। ज्ञान को अपना बना लेना! स्वयं अपने द्वारा ही अपना उद्धार होना है दूसरे किसी के द्वारा नहीं।

उपनिषदों का आदेश है, 'उठो, सचेष्ट हो जाओ! और जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो तब तक न रुको!!'

एक वन्य पशु जैसे अपने शिकार की खोज करता है, इन्द्रिय-लोलुप व्यक्ति जिस प्रकार भोगों के लिये व्याकुल होता है, क्षुधा से पीड़ित व्यक्ति जिस प्रकार भोजन ढूँढ़ता है, डूबता हुआ व्यक्ति जिस प्रकार रक्षा के लिये आर्तनाद करता है, उसी व्याकुलता और शक्ति से तुम सत्य की खोज करो। जिस प्रकार एक सिंह निर्भीक और मुक्त होता है तथा कोलाहल से नहीं काँपता, उसी प्रकार सत्य लाभ के लिये दृढ़संकल्प हो कर तुम भी इस संसार में विचरण करो। क्योंकि इसके लिये असीम शक्ति तथा निर्भयता की आवश्यकता है। यदि तुम अपनी आत्मा की शक्तियों को एकत्रित कर लो तथा साहस पूर्वक माया के आवरण को चीर डालो और आगे बढ़ो तो तुम्हारे लिए सभी सीमाएँ टूट जायेंगी तथा

सभी टेढ़े मेढ़े रास्ते सीधे हो जायेंगे।

क्या तुम ईश्वर की खोज कर रहे हो? तब जान लो कि तुम्हें आत्मदर्शन होगा। तब स्वयं आत्मा ही तुम्हारे सम्मुख ईश्वर के रूप में प्रगट होगी।

ओम् तत् सत्

और तब गुरुदेव की वाणी उस मौन में समा गई जो कि शांति है तथा उनका रूप उस ज्योति में विलीन हो गया जो कि स्वयं ईश्वर की ज्योति है।

ध्यान की घड़ियों में पुनः वह वाणी कह उठी—वत्स! तुम्हें शांति प्राप्त हो। न तो इहलोक में, न परलोक में भय का कोई कारण है। सभी वस्तुओं को व्याप्त करता हुआ प्रेम का महाभाव विद्यमान है और उस प्रेम के लिए ईश्वर के अतिरिक्त और कोई दूसरा नाम नहीं है। ईश्वर तुमसे दूर नहीं है। वह देश की सीमा में बद्ध नहीं है क्योंकि वह निराकार तथा अन्तर्यामी है। स्वयं को पूर्णतः उसके प्रति समर्पित कर दो। शुभ तथा अशुभ तुम जो भी हो सर्वस्व उसको समर्पित कर दो। कुछ भी बचा न रखो। इस प्रकार के समर्पण के द्वारा तुम्हारा संपूर्ण चरित्र बन जायेगा। विचार करो प्रेम कितना महान है। यह जीवन से भी बड़ा तथा मृत्यु से भी अधिक सशक्त है। ईश्वरप्राप्ति के सभी मार्गों में यह सर्वाधिक शीघ्रगामी है।

आत्मनिरीक्षण का पथ कठिन है। प्रेम का पथ सहज है। शिशु के समान बनो। विश्वास और प्रेम रखो तब तुम्हें कोई हानि नहीं होगी। धीर और आशावान बनो तब तुम सहज रूप से जीवन की सभी परिस्थितियों का सामना करने में समर्थ हो सकोगे। उदारहृदय बनो। क्षुद्र अहं तथा अनुदारता के सभी विचारों को निर्मूल कर दो। पूर्ण विश्वास के साथ स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो। वे तुम्हारी सभी बातों को जानते हैं। उनके ज्ञान पर विश्वास करो। वे कितने पितृतुल्य हैं। सर्वोपरि वे कितने मातृतुल्य हैं। अनन्त प्रभु अपनी अनन्तता में तुम्हारे दुःख के सहभागी हैं। उनकी कृपा असीम है। यदि तुम हज़ार भूलें करो तो भी प्रभु तुम्हें हज़ार बार क्षमा करेंगे। यदि दोष भी तुम पर आ पड़े तो वह दोष नहीं रह जायेगा। यदि तुम प्रभु से प्रेम करते हो तो अत्यन्त भयावह अनुभव भी तुम्हें तुम्हारे प्रेमास्पद प्रभु के सन्देशवाहक ही प्रतीत होंगे। वस्तुतः प्रेम के द्वारा ही तुम ईश्वर को प्राप्त करोगे। क्या माँ सर्वदा प्रेममयी नहीं होती? वह आत्मा का प्रेमी भी उसी प्रकार है। विश्वास करो! केवल विश्वास करो! फिर तुम्हारे लिए सब कुछ ठीक हो जायेगा। तुमसे जो

भूलें हो गईं उनसे भयभीत न होओ। मनुष्य बनो। जीवन का साहस-पूर्वक सामना करो। जो भी हो होने दो। तुम शक्तिशाली बनो। स्मरण रखो कि तुम्हारे पीछे अनन्त शक्ति है। स्वयं ईश्वर तुम्हारे साथ हैं। फिर तुम्हें क्या भय हो सकता है?

अभी, यहीं, अमरत्व के लिए संघर्ष करो। मन को प्रशिक्षित करो। वही एकमात्र महत्त्वपूर्ण कार्य है। जीवन का महान अर्थ तथा उद्देश्य ही वह है। यद्यपि जब कि आत्मा मानों हाड़मांस के पिंजरे मे आबद्ध है तब भी अभी ही वह अवसर है जबकि देहात्मबुद्धि को जीत कर अमरत्व का प्रदर्शन किया जाय। स्वयं को अमरत्व का अधिकारी बनाओ। जिन्होंने देहात्मबुद्धि को त्याग दिया है देवता भी उनकी पूजा करते हैं। मृत्यु केवल एक भौतिक घटना मात्र है। मन का जीवन बहुत लम्बा होता है तथा आत्मा का जीवन असीम और अनन्त है। तब यह कितना आवश्यक है कि तुम महान् विचारों का मनन करो तथा इस प्रकार अपने आध्यात्मिक विकास को त्वरित करो। बाह्य वस्तुओं को त्याग दो। यदि कोई व्यक्ति समस्त विश्व को जीत ले तो भी उसे आत्मविजय करनी होगी। उसे स्वयं को जानना ही होगा क्योंकि आत्मज्ञान ही जीवन का लक्ष्य है। ज्ञान या अज्ञान के रूप में यही वह लक्ष्य है जो जीवन को अर्थ देता है। यही वह लक्ष्य है जो जीने की प्रक्रिया तथा आत्मविकास का स्पष्टीकरण करता है। वही ज्ञान वास्तव में मूल्यवान है जो कि अन्तरात्मा को उन्नति की ओर ले जाता है। अतः वीरतापूर्वक स्वयं को आत्मज्ञान प्राप्ति के कार्य में नियुक्त कर दो। हो सकता है कि रास्ता लम्बा हो पर लक्ष्य के विषय में कोई सन्देह नहीं है। सभी शब्दों को त्याग कर उसी के प्रति सचेष्ट हो जाओ जो कि सर्वोच्च है।

अपने पैरों पर खड़े होओ। यदि आवश्यक हो तो समस्त विश्व की भी अवज्ञा कर दो। अन्ततः कौन सी वस्तु तुम्हें हानि पहुँचा सकती है? परमात्मा के साथ ही सन्तुष्ट रहो। दूसरे लोग बाहरी खजाने की खोज में लगे हैं, तुम आन्तरिक खजाने की खोज करो। समय आयेगा जब तुम जान पाओगे कि समस्त पृथ्वी का साम्राज्य आत्मज्ञान की महिमा के सामने धूल के समान है। उठो, इस महत् प्रयत्न के लिए कमर कस लो।

हे महाप्राण! आओ दिव्य जीवन ही तुम्हारी विरासत है। तुम्हारी संपत्ति को कोई चुरा नहीं सकता। तुम्हारी संपत्ति सर्वशक्तिमान आत्मा की है।

ध्यान की शांति में उस वाणी ने कहाः–

संसार के बंधन भयंकर हैं। माया के जाल से छूटना कठिन है। जीवन हमें सिखाता है, सच्चा जीवन जीने के लिए हमें जीवन के पार जाना होगा। मृत्यु पर विजय प्राप्त करनी होगी। यही सबसे महत् कार्य है, तथा इस विजय का पथ है, उन शारीरिक वृत्तियों को जीतना जो हमें मृत्यु की ओर ले जाती हैं। वत्स! मैं तुमसे गंभीरता पूर्वक कहता हूँ कि जो कुछ भी वस्तुएँ तुम्हें प्रलोभित करने के लिए आती हैं उनके प्रति सजगता पूर्वक सावधान रहो। आध्यात्मिक उन्नति का एक मात्र पथ है प्रलोभनों का पूर्वाभास पा लेना। अपने मन पर कड़ी नज़र रखो। जो श्रेष्ठ और महान् हैं सदा उसी में व्यस्त रहो। इस प्रकार धीरे धीरे तुम स्वयं को मुक्त कर लोगे।

जब प्रलोभन आता है तब मन को यह समझने का समय मिलने के पूर्व ही कि क्या हो रहा है, वह मानों अकस्मात ही आ जाता है और व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप में शीघ्रता पूर्वक प्रलोभन के सामने हार जाने की स्थिति में आ जाता है। सभी संत यह जानते हैं इसलिए वे अशुभ विचारों का पूर्वानुमान कर उन्हें उठने से रोकने तथा उनकी शक्ति को क्षीण करने के लिए दृढ़ता पूर्वक शुभ विचारों का चिन्तन करते हैं। विचारों के द्वारा ही व्यक्ति बनता या बिगड़ता है। अतः सावधान रहो जिससे कि तुम शुभ विचारों का ही चिंतन मनन करते रहो।

स्मरण रखो मन को ही तुम्हें डूबने से सदा बचाये रखना है। उसे कभी अकर्मण्य न रहने दो। अकर्मण्यता अशुभ का दूसरा पक्ष है, यह वह घोंसला है जिसमें अशुभ अत्यन्त सफलता पूर्वक संवर्धित होता है। अकर्मण्यता से सावधान रहो। जीवन को गंभीरता पूर्वक ग्रहण करो। समय की कमी तथा तुम्हारे सम्मुख आत्मसाक्षात्कार का जो महान कार्य है उसकी गुरुता को समझो। इसी क्षण तुम्हारा समय है। इसी क्षण तुम्हारा अवसर है। अभी तुम जिन परिस्थितियों की सीमाओं तथा संघर्ष में हो,

यदि असावधानी पूर्वक तुमने स्वयं को इससे अधिक बुरी परिस्थितियों की सीमाओं और संघर्षों में बह जाने दिया तो तुम्हें अत्यन्त कटु पश्चाताप करना पड़ेगा। अपने वर्तमान जीवन को आत्मजयी बना कर स्वयं को अधिक अच्छे भविष्य का, अधिक उत्तम जन्म का अधिकारी बना लो।

संसार मृत्यु से परिपूर्ण है। कर्म का नियम अटल है। सावधान हो जाओ। कहीं ऐसा न हो कि अशुभ कर्मों के मध्य तुम्हारी मृत्यु हो जाय! सावधान रहो, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी इन्द्रियलोलुपता तुम्हें और अधिक बंधन तथा कठिन दुखों को उत्पन्न करने वाले कर्मजाल में फँसा दे! वत्स! एक बार अमृत का स्वाद चख लेने पर यह कैसे संभव है कि तुम असार भूसी में रस लो।

कभी आतंकित न होओ। भगवान की दया पाप के पहाड़ों से भी अधिक बड़ी है। जब तक तुम विश्वास करते हो तब तक आशा है। किन्तु यह पथ लगभग अनन्त लम्बा है। मानव व्यक्तित्व को ईश्वरचैतन्य में परिवर्तित करने में, समस्त दोषों को निर्मूल करने में कितने जीवन लगेंगे इस पर विचार करो। तब क्या तुम यह नहीं समझ सकते कि तुम्हें अपने कल्याण के लिए कितना परिश्रम करना पड़ेगा? और यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो क्या कम से कम मेरे लिए ही तुम लक्ष्य तक पहुँचने की चेष्टा नहीं करोगे? तुम वीरता पूर्वक संघर्ष कर सको तथा पूर्ण हो जाओ इसके लिए मैंने इतनी लम्बी प्रतीक्षा की है। तुम्हारी साधना के लिए मैं व्याकुल रहा हूँ। मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ, रहूँगा। मैं सदैव तुमसे प्रेम करूँगा किन्तु तुम्हें आलस्य को दूर करना होगा। नैतिक आलस्य से बाहर निकलो। मनुष्य बनो।

मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम तुम्हारे जीवन का ध्रुवतारा है। यह तुम्हारे अस्तित्व का आधार है और इसका कारण भी है। क्योंकि मेरे प्रति तुम्हारे प्रेम से ही तुम्हारा उद्धार होगा। गुरु के प्रति भक्ति ही एक आवश्यक वस्तु है। वह तुम्हारी सभी कठिनाइयों को दूर कर देगी। अतः प्रसन्न रहो। जान रखो मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। मेरा ईश्वरानुराग, मेरी अनुभूति, मेरे पास जो कुछ भी है वह सब तुम्हें दे दिया जायेगा क्योंकि यदि आवश्यक हो तो शिष्य के कल्याण के लिए स्वयं को दे देने में ही गुरु का आनन्द है।

एक बार जब मैंने तुम्हें स्वीकार कर लिया है तब यह संबंध अनन्त काल के लिए हो गया है। जाओ और शांति से रहो। यह स्मरण रखो कि यदि तुम स्वयं के प्रति निष्ठावान हो तो तुम मेरी महिमा को बढ़ा रहे हो, यहाँ तक कि मेरे दर्शन का भी विस्तार कर रहे हो।

मेरी आत्मा में श्रीगुरुदेव की वाणी ने कहा–

वत्स! स्वयं तुम्हारे विकास के इतिहास से अधिक रुचिकर और कुछ नहीं है। व्यक्तित्व का विकास ही जीवन को रुचिपूर्ण बनाता है। साक्षी बनो। एक ओर खड़े हो जाओ तथा अपने व्यक्तित्व का इस प्रकार निरीक्षण करो मानों वह तुमसे भिन्न कोई वस्तु हो। अपने स्वेच्छाचारी विचारों तथा चञ्चल इच्छाओं का निरीक्षण करो। गत कल की अनुभूतियों का कितना क्षणिक महत्व है। आगामी दस वर्षों में भी क्या आना जाना है? इस बात का विचार कर जीवन में अविचल रहो। जो कुछ भी सांसारिक है उसका कुछ भी महत्व नहीं है। वह चला जायेगा। इसलिये आत्मिक वस्तु में ही समय लगाओ। अनासक्त बनो। ध्यान में डूब जाओ। तुम्हारी वृत्ति साधुओं की सी हो। किसी भी अनुभव या विचार का महत्व चरित्र निर्माण की उसकी प्रवृत्ति पर ही निर्भर करता है। इस बातका अनुभव कर जीवन का एक नया दृष्टिकोण प्राप्त करो।

संसारी लोग क्षणभंगुर मिट्टी के लोंदे, अपने इस शरीर के लिए कितना समय देते हैं। उनका मन इन क्षणभंगुर वस्तुओं के लिए कितना चिन्तित रहता है। वे लोग इन नाशवान वस्तुओं के साथ ही नष्ट हो जाते हैं। वे सब माया से ग्रस्त हैं। अतः संसारी वस्तुओं की चिन्ता में न पड़ो। संसारी लोगों का संग त्याग दो। मन कितना सूक्ष्म है। वह सदैव भौतिक वस्तुओं को आदर्शान्वित करने की ही चेष्टा करता है। यही माया का जादू है। ऊपर से दिखने वाले तड़क भड़क तथा मिथ्या सौंदर्य से मोहित न होओ। अन्तर्दृष्टि न खोओ। अनादिकाल से यह संघर्ष चल रहा है। तुम्हारी आत्मा के प्रति ईश्वर का जो प्रेम है उसकी तुलना में संसारासक्ति क्या है? आसक्ति शरीर के प्रति होती है इसलिए बंधन है। किन्तु तुम मुझे अपनी आत्मा से प्रेम करते हो वही अंतर है। वत्स! संसार को भयानकता तथा मिथ्यात्व का बोध करने के लिए तुम कठिन पीड़ा से होकर निकलो,

यह दोष नहीं है। तुम जितना अधिक कष्ट पाते हो उतने ही मेरे निकट आते हो।

सहिष्णुता बढ़ाओ। तुम पूरी तरह अनुत्तरदायी तथा आक्रमक हो। इसके पूर्व कि तुम दूसरों के दोष देखो तथा निर्ममता पूर्वक उनकी आलोचना करो, अपनी भंयकर भूलों को देखो। यदि तुम अपनी जीभ पर लगाम नहीं लगा सकते तो उसे तुम्हारे ही विरुद्ध बकने दो, दूसरों के विरुद्ध नहीं। पहले अपना घर सम्हालो। ये शिक्षायें आत्मसाक्षात्कार के सर्वोच्च दर्शन के अनुकूल ही हैं। क्योंकि चरित्र के बिना आत्म-साक्षात्कार हो ही नहीं सकता। नम्रता, निरहंकारिता, सज्जनता, सहनशीलता, दूसरों के दोष न देखना, ये सब गुण आत्मसाक्षात्कार के व्यवहारिक तथ्य हैं। दूसरे तुम्हारे साथ क्या करते हैं इस ओर ध्यान न दो। अपने आत्मविकास में लगे रहो। जब तुमने यह सीख लिया तब एक बहुत बड़े रहस्य को जान लिया। अहंकार ही सबके मूल में है। अहंकार को उखाड़ फेंको। वासना के संबंध में सतत सावधान रहो। जब तक शरीर चिता पर न चढ़ जाय तब तक पूर्णतः इन्द्रियजित होने का निश्चय नहीं हो सकता। यदि तुम इसी जीवन में मुक्त होना चाहते हो तो अपने हृदय को श्मशान बना कर अपनी सारी इच्छाओं को उसमें भस्म कर दो।

अंध आज्ञाकारिता सीखो। तुम एक बच्चे के अतिरिक्त और क्या हो? क्या तुम्हें वास्तविक ज्ञान है? जैसे बच्चे को ले जाया जाता है उसी प्रकार तुम भी स्वयं को ले जाया जाने दो। स्वयं को मेरी इच्छा के प्रति पूर्णतः समर्पित कर दो। क्या मैं प्रेम में तुम्हारी माँ के समान नहीं हूँ? और फिर मैं तुम्हारे पिता के समान भी हूँ क्योंकि मैं तुम्हें दण्ड भी देता हूँ। यदि तुम गुरु होना चाहते हो तो सर्वप्रथम शिष्य होना सीखो। तुम्हें अनुशासन की आवश्यकता है।

पहले मेरे कार्य के लिए तुम्हारा उत्साह बचकाना तथा उत्तेजना पूर्ण था । अब वह सच्ची अन्तर्दृष्टि से युक्त होता जा रहा है। बच्चा विचार-हीन होता है, युवक आकांक्षी होता है, प्रौढ़ व्यक्ति ही उपादेय होता है। मैं तुम्हें आध्यात्मिक अर्थ में प्रौढ़ बनाना चाहता हूँ। मैं तुम्हें गंभीर, दायित्वपूर्ण, निष्ठावान, सुअनुशासित तथा चरित्र की दृढ़ता और निष्ठा

के द्वारा मेरे प्रति अपने प्रेम और निष्ठा को प्रगट करने वाला बनाऊँगा। बढ़ो! मेरा आशीर्वाद तथा प्रेम सदैव तुम्हारे साथ है।

ध्यान की घड़ियों में मुझे सम्बोधित करनेवाली वाणी मैंने सुनीः– हृदय में कटुता न रखो। स्वयं के साथ निष्कपट बनो। स्वयं के संबंध में सभी भ्राँत धारणाओं को उखाड़ फेंको। सभी मिथ्यासक्तियों को निर्मूल कर दो। शरीर के स्थान पर चैतन्य को देखो। दूसरे तुम्हें जैसा देखते हैं स्वयं को उसी प्रकार देखो। सर्वोपरि स्वयं पर मिथ्यानुकम्पा न करो। दृढ़ बनो। यदि तुममें भूलें हैं तो वे एक सिंह की भूलों के समान हों।

विधि का विधान शक्तिशाली है। तुम्हारी स्वयं की इच्छा के अनुपात में वह तुम्हारे हृदय का मर्दन करेगा तथा व्यक्तित्व को झकझोर देगा। किन्तु वह तुम्हें सच्चे आत्मज्ञान की ओर भी ले जायेगा। अतः अपने विश्वास को विधान पर आधारित करो। क्रिया से प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। अतः तुम्हारी क्रियाओं को हृदय की पवित्रता तथा विचारों से आने दो। तब तुम शांति का अनुभव करोगे। भावना के नाम पर प्रायः बहुत से दोष ही ढके जाते हैं। उनकी जड़ों में स्थूल शारीरिक मूल प्रवृत्तियाँ ही क्रियाशील होती हैं। उन्हें सोने की चादर से ढक देने से कोई अंतर नहीं पड़ता। व्यक्ति में विशुद्ध शारीरिक संवेगों को उच्च भावों के आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृति होती है। किन्तु विवेक इस छद्म को चीर देता है तथा यह सिखाता है कि मिथ्या आसक्ति सदैव आत्मकेन्द्रित, निरंकुश, क्रूर और विवेकहीन होती है। वह स्वेच्छाचारी, अंधा, तथा शरीरासक्त होता है। इसके विपरीत विशुद्ध प्रेम आत्मा से संबंधित होता है। प्रेमास्पद को असीम स्वतंत्रता देता है तथा आत्मत्याग और विवेक से परिपूर्ण होता है। अतः अपने हृदय से आसक्ति और अनुचित भावों को निकाल फेंको और एक बार यह कर लेने पर जैसे तुम अपनी वमन की हुई वस्तु को घृणास्पद होने के कारण पुनः नहीं देखना चाहते उसी प्रकार उन आसक्तियों के विषय में न सोचो। वह बंधन है, भयानक बंधन। इसे स्मरण रखो तथा मुक्ति के लक्ष्य की ओर वीरतापूर्वक बढ़ चलो।

सभी प्रवृत्तियों में संन्यास की प्रवृत्ति सर्वश्रेष्ठ है। स्वयं को सभी

बंधनों से मुक्त करके तुम उन सब की सहायता करते हो जो तुम्हें जानते हैं या जो तुम्हारे जीवन में आयेंगे। आत्म-साक्षात्कार के द्वारा संन्यासी सभी कर्तव्यों को पूर्ण कर लेता है। उसके आत्मत्याग से दूसरे भी मुक्त हो जाते हैं। अपने हृदय और कर्मों में संन्यासी बनो। किसी व्यक्ति या वस्तु पर निर्भर न रहो। दूसरों को उनकी स्वतंत्रता दो तथा तुम स्वयं भी मुक्त रहो। अपनी असुविधाओं के कारण निराश न होओ क्योंकि वही असुविधायें यदि आध्यात्मिक दिशा की ओर मोड़ दी जाएँ तो सुविधाओं में परिवर्तित हो जायेंगी। अपनी भावनाओं का अध्यात्मीकरण करो। और जब तुम्हारे स्वभाव में कोई दुर्भावना या स्नायविक-उत्तेजना न रहेगी तब तुम अपने आधार पर खड़े हो सकोगे तथा अनेकों के लिए ज्योति और सहायक होओगे, भले ही तुमने उन लोगों को देखा भी न हो। सिंह के समान बनो, तब सभी दुर्बलताएँ तुमसे दूर हो जायेंगी। ईश्वर बनने की इच्छा करो तब तुम्हारी देहात्मबुद्धि दूर हो जायेगी। तुम शुद्धात्मा हो जाओगे। प्रकृति के भव्य दृश्यों, पर्वतों, विशाल समुद्रों तथा चमकते सूर्य से शिक्षा ग्रहण करो। शक्तिशाली व्यक्तित्व से एकत्व बोध करो।

वत्स! स्वयं का निर्माण करना एक लम्बी तथा कष्टप्रद प्रक्रिया है। तुम उन्नत हो सको इसके पूर्व यह आवश्यक है कि तुम स्वयं के प्रति अत्यन्त निष्कपट बनो। अपने प्रति छूट या दया के सभी पर्दों को लगातार दुःख तथा अपने क्षुद्र अहं की सीमा के अनुभव द्वारा चीर डालना होगा। ईश्वर के साथ अज्ञान तथा तुम्हारी आत्मा के साथ छद्म नहीं हो सकता। सूक्ष्म तथा सर्वश्रेष्ठ अवश्य प्रगट होगा। अतः दुःख के प्रत्येक वाहक के प्रति कृतज्ञ रहो जो कि एक साथ तुम्हें और तुम्हारी दुर्बलता को तुम्हारे सामने प्रगट कर देता है। कहो, दुःख तुम धन्य हो!

अल्पविद्या ने तुम्हें बुद्धिमान, अहंवादी बना दिया है। महत् विद्या तुम्हें आध्यात्मिक बना देगी। स्मरण रखो मन आत्मा नहीं है। अनुभवों को मन को कुचल डालने दो, जैसा कि वह करेगा। यह उसे शुद्ध करेगा यही मुख्य बात है। क्रमशः आत्मा का सूर्य अज्ञान के काले बादलों को भेद देगा और तब लक्ष्य तुम्हारे सामने स्पष्ट हो जायेगा। तुम उसकी ज्योति में मिल जाओगे।

(२०)

अपने उपदेशों को चालू रखते हुये गुरुदेव ने कहाः

तिल तिल कर मैं तुम्हारे व्यक्तित्व पर अधिकार करूँगा। पग पग चलकर तुम मेरे निकटतर आते जाओगे क्योंकि मैं ही तुम्हारा प्रभु और ईश्वर हूँ। तथा मै तुम्हारे और मेरे मध्य इन्द्रियभोग रूपी देवताओं या तत्संबंधी विचारो को सहन नहीं करूँगा। वत्स! पर्दों को चीर डालो।

तब मैं जान पाया कि गुरुदेव ने ही मेरा दायित्व ले लिया है। मेरे मस्तक पर से एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। उन्होंने पुनः कहाः—

इन्द्रियातीत अनुभूतियाँ अच्छी हैं, किन्तु चरित्र द्वारा उत्पन्न होनेवाली चेतना इन्द्रियातीत अनुभूति से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। चरित्र ही सब कुछ है तथा चरित्र त्याग से ही बनता है। दुःख तथा आघात हमारी आत्मा की शक्ति को प्रगट कर हमारे चरित्र का निर्माण करते हैं। उनका स्वागत करो। ये जिन दैवी सुअवसरों का निर्माण करते हैं उन्हें देखो। जैसी की कहावत है, हीरा हीरे को काटता है, उसी प्रकार दुःख ही पाशविक प्रवृत्तियों को जीतता है। धन्य है दुःख! महाभक्तिमति कुन्ती ने प्रभु से प्रार्थना की थी कि उसके भाग में सदा दुःख ही पड़ते रहें जिससे कि वह सदैव प्रभु का स्मरण करती रह सके। वत्स! उसकी प्रार्थना ही सच्ची प्रार्थना थी। तुम भी उसी प्रकार प्रार्थना करो। यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो यह जान लो कि दुःख तुम्हें मेरे ओर अधिक निकट लायेगा तथा तुम्हारा श्रेष्ठ व्यक्तित्व प्रगट हो उठेगा।

यदि अमरत्व को प्रगट करना हो तो मर्त्य का दमन कर उसे सूली पर चढ़ाना होगा। तुम्हारा सत्यस्वरूप चेतना के अस्थायी आधार के पीछे ही है। वत्स! संकीर्णता न रखो। तुमने आध्यात्मिक जीवन का एक पथ स्वीकार किया है, उस विषय में धर्मान्ध क्यों होते हो। ईश्वरप्राप्ति केवल एक ही उपाय से नहीं होती। सभी पथों से उन्हें पाया जाता है। जहाँ कहीं भी महिमा और महत्ता है प्रभु स्वयं वहाँ प्रगट हैं। सभी दीवारों को ढहा दो। तुम्हारे लिए कोई विशेष सीमायें निर्धारित नहीं की गई हैं।

सर्वतोमुखी बनो। तुम्हारा संपूर्ण कर्त्तव्य आत्मपूर्णता में ही है। सब विचारों को छोड़कर केवल एक ही विचार का उपदेश देने की आज्ञा तुम्हें किसने दी! उपदेश ही देने की आज्ञा तुम्हें किसने दी? मैंने अल्पमात्रा में तुम्हारी आँखे खोली हैं, उसके पूर्व तुम्हारी दृष्टि आच्छादित थी। अब तुम यह जान पा रहे हो कि दूसरों को शिक्षा देने के पूर्व तुम्हें, स्वयं को प्रशिक्षित करना आवश्यक है। अहंकार के प्रति सावधान रहो। तथा-कथित निःस्वार्थता तथा कार्य करने की इच्छा के पीछे यही गहरा पैठा अहंकार है। वस्तुतः अहंकार ही सबसे बड़ा अभिशाप है। पहले स्वयं को नियोजित करो। चंचल मन के साथ दूसरों की भलाई करने की आशा तुम कैसे कर सकते हो? सर्वप्रथम आवश्यक वस्तु है एकाग्रता। तुम्हारी ऊपरी चेतना उतनी ही स्वेच्छाचारी और अप्रशिक्षित है जितना कि एक उद्दण्ड बालक। आवश्यक यह है कि तुम अपनी गहराई को, तुम्हारे सच्चे स्वरूप को ऊपर सतह पर लाओ। एक क्षण देवता होना तथा दूसरे क्षण वासनाओं का दास हो जाना नहीं चलेगा। वत्स! चरित्र, जैसा कि मैंने बार बार कहा है, दर्शन की कसौटी है।

बुद्ध तथा ऋषियों के काल तथा आधुनिक युग के मध्य आदर्शवाद और रोमांस का आकर्षण आज भी खड़ा है। पृथ्वी जैसी आज है उस समय भी वैसी ही थी। ग्रीष्म उष्ण तथा शीत ऋतु ठंडी थी। मनुष्य के हृदयों में वासनाएँ थीं। धन और दरिद्रता, स्वास्थ्य और रोग साथ साथ थे। जंगल, पहाड़, नदियाँ, नगर, बाज़ार, सभी थे और मृत्यु तब भी सभी जगह अकस्मात् व्यक्ति के प्राण हरण कर लेती थी जैसा कि वह आज भी करती है। उन्हीं कठिनाइयों के विरुद्ध संघर्ष करना पड़ता था। बुद्ध ने भी उसी संसार को देखा जिसे आज तुम देख रहे हो। अतः वही अनुभूति संभव है। स्वयं को कार्य में नियोजित कर दो। ठीक उसी मानवीय वातावरण में जैसा कि आज है स्वयं वेद भी निःसृत हुये थे। वत्स! स्वयं को कार्य में नियोजित कर दो।

चेतन मन को हाथ में लेना होगा। यही वह उपकरण है, जो कि जब पूर्णतः तैयार हो जायेगा तब तुम उसके द्वारा अपनी अन्तश्चेतना की छिपी हुई गहराइयों को खोज सकोगे और पुराने संस्कारों को भस्म कर सकोगे जो कि अभी यदा कदा भीतर की देहलीज़ से ऊपर दौड़ आते हैं। तथा

इसी चेतन मन के द्वारा जब उनका अध्यात्मीकरण हो जाता हैं, सर्वोच्च चेतना (समाधि) की उपलब्धि की जा सकती है। मनुष्य ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ता है। चेतन मन के द्वारा जीता क्षेत्र ही ज्ञान है। इसके द्वारा विचारों के असीम क्षेत्र का अधिकाधिक उपलब्ध होता जाता है। इसका अन्त सर्वज्ञता है। वत्स, सच्चा ज्ञान भौतिक नहीं आध्यात्मिक होता है। ज्ञान के द्वारा व्यक्ति उद्घाटित होता है, वस्तु नहीं।

सच्चा ज्ञान सदैव एक चेतन अनुभूति की प्रक्रिया है। विचारों को आत्मसात् करना भोजन ग्रहण करने के समान ही हमारे चेतन व्यक्तित्व को स्पर्श करता है तथा उस पर प्रभाव डालता है। स्नायुजालों को, विचारों को अवश्य आत्मसात् करना चाहिये तब समस्त शरीर ही चैतन्यमय हो उठता है। शरीर आत्मा हो उठता है। इसी अर्थ में कुछ आचार्यों ने कहा है कि मैं शरीर से भी चिन्मय हूँ। इसीलिए गुरु की शारीरिक सेवा भी एक सौभाग्य है। तब शरीर स्वयं चैतन्य की एक प्रक्रिया बन जाता है।

वत्स! एक बहुत बड़ा कार्य जो तुम्हें करना होगा वह है आत्मसंपर्क। अभी तुम्हारे मन की एकाग्रता अधिकांश परिस्थितियों तथा वातावरण पर निर्भर है। तुम दूसरों से संपर्क करने की आवश्यकता अनुभव करते हो। किन्तु दूसरे का मन तुम्हें थोड़ी उत्तेजना भर दे सकता है। जब तुम दूसरों से बातचीत करते हो तब भी तो तुम स्वयं अपने आपसे भी बातें करते हो। किन्तु ज्ञान जो सच्चा प्रेरक है वह भीतर से आना चाहिये। दूसरों पर क्यों निर्भर रहोगे? गैंडे के समान अकेले बढ़ चलो।

वत्स! मन स्वयं ही गुरु हो जाता है। यह एक प्राचीन उपदेश है। क्यों? क्योंकि मन पर आत्मसाक्षात्कार के लिए ज़ोर डालने वाले तुम स्वयं ही तो दिव्य हो। मैं तथा अन्य सभी उस महान सत्य के विभिन्न पथ हैं। जब मैं शरीर में था, तुम्हारे स्तर पर के चैतन्य का आश्रय किया था, वह मानो एक खिड़की थी जिससे तुम अनंत को देख पाते थे। किन्तु वह चेतना जो कि मैं था, मैं स्वयं ही उसे महान दिव्य सत्ता में विलीन करने की चेष्टा करता हूँ। तुममें जो सत्य है, मुझमें जो सत्य है, वह ब्रह्म ही है। वत्स! उस ब्रह्म की ही पूजा करो! उसी की उपासना करो।

और तब गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए एक वाणी ने मेरी आत्मा से कहाः–

वत्स! अपने गुरु पर असीम श्रद्धा रखो। उनकी कृपा से, उनके ज्ञान से तुम्हारी अन्तरात्मा पुनर्जीवित हो उठी है। उन्होंने तुम्हारा चयन किया है तथा उनके द्वारा ही तुम पूर्ण बनाये गये हो। गुरु की अनुभूतियाँ शिष्य पर मूसलाधार वर्षा के समान गिरती हैं। यह सतत चलता है और इसे कोई रोक नहीं सकता। तुम्हारे प्रति उनका प्रेम असीम है। तुम्हारे लिए वे किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। वे तुम्हें कभी नहीं त्यागेंगे। उनका प्रेम ही उनकी दिव्यता का प्रमाण है। उनका अभिशाप भी छद्म में वरदान है।

तुम्हारे गुरु की अनुभूति तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष और घनीभूत रूप में है। वस्तुतः उनके जीवन के परिवर्तन के द्वारा ही तुम आध्यात्मिक सत्य के दर्शन करते हो। तुम्हारे लिए और कोई मार्ग नहीं है। स्वयं को पूर्णतः गुरु के प्रति समर्पित कर दो। सब देवता भी क्या हैं? जिसने अपने स्वरूप की अनुभूति कर ली वही सबसे महान आध्यात्मिक पुरुष है। जिसने आत्मा का दर्शन कर लिया है उसकी महिमा को देख कर मनुष्य उस अनुभूति को विभिन्न रूपों में देख पाता है। गुरुदेव व्यक्तित्व की सीमा से बहुत अधिक हैं। उनके द्वारा आध्यात्मिक सत्य के सभी पक्ष प्रकाशित होते हैं। क्या वे स्वयं शिव नहीं हैं? शिव महान् गुरु के एक पक्ष मात्र हैं। अपने गुरु का शिव रूप में ध्यान करो। इष्ट के रूप में ध्यान करो और ध्यान के सर्वोच्च क्षणों में तुम पाओगे कि गुरुदेव तुम्हारे इष्ट में विलीन हो गये हैं। आत्मसाक्षात्कार के द्वारा आध्यात्मिक सत्य के मूर्त स्वरूप बने श्रीगुरुदेव तुम्हारे सम्मुख खड़े हैं। फिर तुम भावनात्मक देवताओं या देवी देवताओं संबंधी धारणा को ले कर क्या करोगे? तुम जहाँ भी जाओगे गुरु तुम्हारे साथ रहेंगे। क्योंकि मनुष्य की सहायता करने के लिए उन्होंने निर्वाण का भी त्याग कर दिया है। इस रूप में वे सचमुच दूसरे बुद्ध हैं। क्योंकि उन्होंने अपने स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया है अतः

उनका व्यक्तित्व और अधिक सत्य तथा शक्तिशाली हो उठा है। ब्रह्मचैतन्य लाभ करने के कारण वे अतिमानवीय जीवन तथा ज्ञान से संपन्न हैं। जो ब्रह्मस्वरूप हो गया है सभी देवता उसका नमन करते हैं। अपने गुरु की पूजा के परिप्रेक्ष में सभी आध्यात्मिकता के दर्शन करो। इस प्रकार सभी एक हो जायेगा तथा सर्वोच्च अद्वैत चेतना की उपलब्धि होगी। क्योंकि विशाल से विशालतम परिप्रेक्ष में गुरु के दर्शन होंगे। यहाँ तक कि तुम्हारे ज्ञान तथा भक्ति के विस्तार के अनुसार भी गुरुदर्शन होंगे। व्यक्तित्व के चरम विकास के द्वारा सर्वोपरि अहंशून्यता का, स्वयं आत्मा का साक्षात्कार होता है। वहाँ गुरु, ईश्वर, और तुम तथा समस्त विश्व ब्रह्माण्ड एक हो जाते हैं। वही लक्ष्य है। गुरुदेव को असीम के परिप्रेक्ष में देखो। वही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। गुरुभक्ति के द्वारा तुम सर्वोच्च पथ पर गमन करते हो।

एक अर्थ में आध्यात्मिक महापुरुष इष्ट से भी अधिक सत्य हैं। तुम पुत्र के द्वारा ही पिता को समझ सकते हो। ईश्वर की पूजा करने के पूर्व ईश्वरतुल्य मनुष्य की पूजा करो। मनुष्य की ब्रह्मानुभूति संपन्न चेतना के अतिरिक्त ईश्वर और कहाँ है? शिष्य के लिए गुरुपूजा ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि गुरु के व्यक्तित्व की पूजा के द्वारा तुम्हारा क्षुद्र व्यक्तित्वबोध भी तिरोहित हो जायेगा तथा आध्यात्मिक दृष्टि का क्षितिज विशाल से विशालतर होता जायेगा। पहले शारीरिक उपस्थिति आवश्यक है उसके पश्चात् आती है गुरु के व्यक्तित्व की पूजा! दूसरा सोपान है शारीरिक उपस्थिति तथा गुरुपूजा के भी परे जाना क्योंकि गुरु बताते हैं कि शरीर आत्मा नहीं है। शरीर अवस्था से गुरुदेव के उपदेशों तथा सिद्धान्तों की ओर, व्यक्ति से तत्त्व की ओर, शिष्य को बच्चे के समान प्रशिक्षित करना आवश्यक है। घनिष्ठ संबंधों में, सर्वोपरि घनिष्ठ गुरु शिष्य के संबंध में शरीर और मन का उतना महत्त्व नहीं रह जाता। स्वयं गुरु की आत्मा ही उच्च से उच्चतम अनुभूति के द्वारा शिष्य में प्रविष्ट हो जाती है। गुरु के स्वभाव में शिष्य का व्यक्तित्व अधिकाधिक विलीन होता जाता है और गुरुदेव का व्यक्तित्व अधिकाधिक उस महतत्त्व में, जिसका कि गुरुदेव का शरीर भी एक व्यक्त स्वरूप है विलीन होता जाता है और तब उस अत्युदात्त एकत्व की उपलब्धि होती है। गुरु तथा शिष्य

के दो व्यक्तित्वों का जल मिलकर असीम ब्रह्म-समुद्र हो जाता है। उस परम सौंदर्य की उपलब्धि के लिए जहाँ गुरु की आज्ञा होगी क्या तुम वहाँ नहीं जाओगे? उनके लिए, यदि उनकी इच्छा हो तो क्या तुम सहस्रों जन्म-मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ोगे? तुम उनके प्रिय सेवक हो। उनकी इच्छा ही तुम्हारे लिए नियम है। तुम्हारी इच्छा उनकी इच्छा का उपकरण मात्र है। उनका आदेश पालन करना यही धर्म है। जैसा कि शास्त्र कहते हैं, गुरु ही ईश्वर हैं। गुरु ही ब्रह्मा हैं। गुरु ही विष्णु हैं। गुरु ही महादेव हैं। वास्तव में वे ही परम ब्रह्म हैं। गुरु से बड़ा और कोई नहीं है।

ध्यान की दूसरी घड़ी में गुरुदेव ने कहाः–

वत्स! मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है, अतः जीवन का सदुपयोग कर लो। जब तुम्हारे मन में कोई उदात्त प्रेरणा जागे तो उसे लोलुपता पूर्वक पकड़ लो। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे भूल जाने के पाप के कारण वह सदैव के लिए लुप्त हो जाय। क्योंकि किसी भी आदर्श सिद्धान्त की अनुभूति का एक व्यावहारिक पथ है। अनुभूति की पद्धति भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि स्वयं तत्त्व की धारणा। अत्यल्प अभ्यास ही क्यों न हो उसंकी तुलना में हज़ार बड़ी बातों का क्या महत्त्व है? बातों से भावनाएँ जाग सकती हैं, किन्तु उस सिद्धांत की अनुभूति के लिए यदि तुम आवश्यक उत्तरदायित्व ग्रहण न करो तो समय तथा भावना व्यर्थ ही नष्ट हुई। अपने हृदय में कपट न रखो। अपनी अकर्मण्यता पर सोने की चादर डाल कर उसे शरणागति न कहो। निश्चित जान लो आध्यात्मिक भावनाओं के प्रति तुम्हारी प्रतिक्रिया की कमी के पीछे शारीरिक सुख-सुविधा की अनुशोचना है। यदि तुम्हारे मन में कोई कठिन आध्यात्मिक साधना करने की बात पैठ जाय तो बहुत संभव है तुम्हारा शरीर कह उठे, मन, क्या यह आरामदायक होगा? ओह! शारीरिक कारणों से तुम अपने आदर्श से कितने नीचे गिर गये हो!

वत्स! सांसारिक संघर्षों में जितने साहस की आवश्यकता है उतना ही साहस आध्यात्मिक जीवन के लिए भी आवश्यक है। कृपण व्यक्ति स्वर्ण-संग्रह में जितना अध्यवसाय करता है, सैनिक शत्रु पर आक्रमण करने के लिए जितना साहस रखता है, अविनाशी कोष को प्राप्त करने के लिए, सदैव के लिए शरीर को जीत लेने के लिए, देहात्मबुद्धि को जीत लेने के लिए तुम्हें उतने ही अध्यवसाय की, उतने ही महान साहस की आवश्यकता है। किसी भी प्रकार की अनुभूति के पीछे रहस्य है, अदम्य साहस, सर्वथा भयहीन साहस। आत्मविश्लेषण की क्षमता बढ़ाओ तब तुम देख पाओगे कि जब कभी तुम त्यागपूर्ण जीवन का साहसपूर्वक

पालन करने में असफल होते हो तो वह इसलिये कि तुम्हारा शरीर क्षुद्र स्वार्थपूर्ण नश्वर दैहिक इच्छाओं को पूर्ण करना चाहता है।

इस शरीर को निर्मूल करना ही होगा। अपनी आत्मा का साक्षात्कार करने के दृढ़ निश्चय में इसे जाने दो। वत्स! अंधकार में छलांग् लगाओ तब तुम पाओगे कि वही अंधकार प्रकाश में परिवर्तित हो गया है। सभी बंधनों को काट डालो। वरंच शरीर को कल की अनिश्चितता के महाबंधन के अधीन कर दो और तुरंत तुम पाओगे कि तुमने सर्वोच्च स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है तथा शरीर तुम्हारी आत्मा का दास बन गया है।

आध्यात्मिक जीवन में साहस पूर्ण कदमों की आवश्यकता है जैसा कि सांसारिक जीवन के लिये आवश्यक है। जो खतरा मोल नहीं ले सकता उसे कभी कोई उपलब्धि भी नहीं हो सकती। शरीर को अनिश्चितता के समुद्र में फेंक दो। परिव्राजक संन्यासी के समान बनो। व्यक्ति, स्थान या वस्तु से आसक्त न हो और यद्यपि तुम शरीर खो दोगे तुम्हें आत्मा की प्राप्ति होगी। शौर्य एक आवश्यक वस्तु है। जंगल के शेर का शौर्य। सशक्त हाथ ही माया के परदे को चीर सकते हैं। कल्पना से कुछ नहीं होगा। आवश्यकता है पौरुष की। जब तक शरीर का भय है तब तक आत्मानुभूति नहीं हो सकती। थोड़ा विचार करके देखो, संसारी लोग संसारी वस्तुओं की उपलब्धि के लिए कितना त्याग करते हैं। तब क्या तुम आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए त्याग न करोगे? ईश्वरप्राप्ति क्या केवल वाग्मिता या रूपमात्र से हो जायेगी। क्षुद्र आश्रय देने वाले प्रभावों से मुक्त जाओ। खुले में आ जाओ। असीम को अपना क्षितिज बनाओ, समस्त विश्व तुम्हारा क्षेत्र हो जहाँ तुम विचरण करो!

सभी प्रकार के अनुभवों का स्वागत करो। अपने संकुचित दायरे से बाहर निकलो। निर्भीकता तुम्हें मुक्त कर देगी । जैसा कि यह निश्चित है कि जीवन में केवल धर्म ही सत्य है, वैसा ही यह भी निश्चित है कि संन्यास ही सच्चा आध्यात्मिक साधन है। धर्म के समान ही त्याग भी कोई एक विशेष विधान नहीं है। यह समग्रता है, चेतना की एक अवस्था है, व्यक्तित्व की एक स्थिति है। अनुभूति में तुम्हें स्वयं ईश्वर के आमने सामने होना होगा। त्याग में तुम्हें शाश्वत शांति प्राप्त करनी होगी। तुम्हारे लिए कोई दूसरा अनुभूति नहीं कर सकता। उसी प्रकार तुम्हारे लिये कोई

दूसरा त्याग नहीं कर सकता। अतः साहसी बनो और स्वयं अपने पैरों पर खड़े हो जाओ। स्वयं तुम्हारी आत्मा के बिना और कौन तुम्हारी सहायता कर सकता है? अपने मन को अपना गुरु बनाकर, अपनी अन्तरात्मा को अपना भगवान बनाकर गंडे के समान निर्भीक हो कर बढ़े चलो। जो भी अनुभव आवे आने दो। यह जान लो कि उससे शरीर ही प्रभावित होता है, आत्मा नहीं। ऐसा विश्वास और दृढ़ता रखो कि तुम्हें कोई भी जीत न सके। तब सब कुछ त्याग कर तुम पाओगे कि सभी वस्तुयें तुम्हारे अधीन हैं और तुम अब दास नहीं हो। किन्तु मिथ्या उत्साह से बचो। सुख या दुःख की संवेदनाओं की चिन्ता न करो। केवल बढ़े चलो, बिना पथ के, बिना भय के, बिना पश्चाताप के। सच्चे संन्यासी बनो। मिथ्या धारणाओं का आश्रय न लो। सभी परदों को फाड़ डालो। सभी बंधनों को काट डालो। सभी भयों को जीत लो तथा आत्मा का साक्षात्कार करो।

देर न करो। समय कम है तथा जीवन क्षणभंगुर। कल बीत गया है, आज तीव्र गति से भाग रहा है! आगामी कल हाथों के पास आ गया है। केवल ईश्वर पर ही निर्भर रहो। त्याग के द्वारा ही तुम सब कुछ प्राप्त करते हो। त्याग के द्वारा ही तुम सब कर्तव्यों की पूर्ति करते हो। तुम्हारा जीवन दे कर ही तुम शाश्वत जीवन लाभ करते हो। क्योंकि किस जीवन का तुम त्याग करते हो? इन्द्रियासक्त जीवन तथा इन्द्रियानुभूति पूर्ण विचारों का ही तो तुम त्याग करते हो। अपने व्यक्तित्व की गहराइयों में जाओ। वहाँ तुम पाओगे कि आत्मा का अन्तर प्रवाह कार्यरत है जो कि शीघ्र ही उदासीन सतह को त्याग तथा ईश्वर साक्षात्कार के प्रवाह से आप्लावित कर देगा। स्वयं पर विश्वास करो। बहुत समय तक तुम उदासीन रहे, अब निष्ठावान बनो। अत्यन्त निष्ठावान बनो। तब आत्मा की सभी शुभ वस्तुएँ तुम्हारी हो जायेंगी।

(२३)

गुरुदेव ने पुनः कहाः–

शब्द कहे जा चुके हैं, उपदेश दिये जा चुके हैं, अब कार्य करने की आवश्यकता है। बिना आचरण के उपदेश व्यर्थ हैं। तुमने बहुत पहले ही अपने संकल्पों तथा अन्तर्दृष्टि को आचरण में नहीं लाया। इस बात का तुम्हें कितना दुःख होगा! जब रास्ता मिल गया है तब वीरतापूर्वक बढ़ो। जिसने आत्मसाक्षात्कार का दृढ़ संकल्प कर लिया है उसके मार्ग में कौन बाधा दे सकता है! जब तुम अकेले खड़े होओगे तब ईश्वर तुम्हारा साथी होगा, मित्र होगा, सर्वस्व होगा। ईश्वर के सान्निध्य का और अधिक बोध हो सके इसके लिये अन्य सभी का त्याग करना क्या अधिक अच्छा न होगा? जब तुम प्रकृति का त्याग कर दोगे तब प्रकृति स्वयं अपने सौंदर्य को तुम्हारे सामने प्रगट कर देगी। इस प्रकार तुम्हारे लिये सभी कुछ आध्यात्मिक हो जायेगा। फिर एक घास का तिनका भी तुमसे आत्मा की ही बात कहेगा।

जब तुमने सब कुछ त्याग दिया है और एकांत पथ में चले जा रहे हो तब स्मरण रखना कि मेरा प्रेम तथा ज्ञान सदैव तुम्हारे साथ रहेगा। तुम मेरे निकट, अत्यन्त निकट रहोगे। तुम्हें और अधिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त होगी। इच्छाशक्ति के लिये वर्धिष्णु उद्देश्य प्राप्त होगा तथा विश्वबन्धुत्व के भाव का महान विकास होगा। तुम सभी वस्तुओं के साथ एक हो जाओगे।

वत्स, त्याग ही एक पथ है। स्वयं को आज ही मृत कल्पना करो।

कितना भी अरुचिकर क्यों न लगे यह निश्चित जान लो कि कभी, चाहे जिस प्रकार हो, आत्मा के लिये शरीर की आहुति देनी होगी। देहात्मबुद्धि को अवश्य जीतना होगा। मंद उत्साह के साथ, दुर्बल निष्ठा के साथ तुम इस लम्बे पथ पर नहीं चल सकते। समय को सामने से पकड़ो। सुविधा का लाभ तुरंत उठा लो। तुम जैसे हो तथा जो होना चाहते हो, इसके बीच की बाधा को यदि तुम एक छलांग में नहीं पार कर सकते

तो उसे पार करने में शीघ्रता करो। जैसे एक शेर अपने शिकार पर टूट पड़ता है उसी प्रकार स्वयं पर टूट पड़ो। अपने मर्त्य स्वरूप पर दया न करो। तब तुम्हारा अमर स्वरूप चमक उठेगा।

वत्स! छोटी छोटी बातों पर ध्यान न दो। जब विश्वस्वरूप स्वयं तुम पर प्रकाशित हो उठा है तब ब्यौरों का क्या महत्त्व है। ब्यौरे सब केवल भौतिक हैं। उन पर अपने मन को केन्द्रित न करो। एकत्व की चिन्ता करो, बहुत्व की नहीं। वैराग्य की भावना लेकर, ब्यौरों के क्या अनुभव आते हैं, उनकी चिन्ता न करो। स्मरण रखो तुम स्वयं ही अपने शत्रु तथा कल्याणाकांक्षी हो। अपने पूर्ण संस्कारों के समूह को तुम एक ही झटके से नहीं काट सकते। एक बार तुम्हारे मन में आवश्यक संकल्प जाग उठने पर यह कार्य सरल हो जायगा तथा मेरी कृपा और आशीर्वाद इस संकल्प को दृढ़ बनाने में तुम्हारे साथ रहेंगे। विश्वास रखो और तुम्हारे साथ सभी शुभ होगा।

दूसरों के मतों की चिन्ता क्यों करते हो? तुम्हारी इस मनोवृत्ति से क्या लाभ होगा? जब तक तुम दूसरों के मत की अपेक्षा करते हो तब तक यह जान लो कि तुम्हारे हृदय पर अहंकार का अधिकार है। स्वयं की दृष्टि में सदाचारी बनो फिर दूसरे लोग कुछ भी कहें तुम उनकी चिन्ता नहीं करोगे। परामर्श न लो अपनी उच्च इच्छा का पालन करो। केवल अनुभव ही तुम्हें सिखा सकता है। अपने समय को व्यर्थ की चर्चा में नष्ट न करो। इससे तुम्हें कुछ भी लाभ न होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव से ही परिचालित होता है। फ़िर कौन किसे परामर्श दे सकता है? सर्वतोभावेन स्वयं पर निर्भर रहो। मार्गदर्शन के लिये स्वयं के पास जाओ। दूसरों के पास नहीं।

तुम्हारी निष्ठा तुम्हें दृढ़ता प्रदान करेगी, तुम्हारी दृढ़ता तुम्हें लक्ष्य पर पहुँचा देगी। तुम्हारी निष्ठा तुम्हें दृढ़प्रतिज्ञ भी करेगी तथा तुम्हारी प्रतिज्ञायें तुम्हें सभी प्रकार के भय पर विजय प्रदान करेंगी। मेरा आशीर्वाद तुम पर है; सदैव के लिये है!

और तब गुरुदेव की वाणी ने कहाः–

वत्स! स्वयं को अन्तरतम में निविष्ट करो। बाह्य वस्तुएँ तीर और बर्छी के समान हैं जो आत्मा में खरोंचें लगाती हैं। अपनी अन्तरात्मा को अपना निवास स्थान बनाओ। सोलोमन महान ने ठीक ही कहा है– निस्सार वस्तुओं का अभिमान! सभी कुछ निस्सार है। सचमुच ऐसा ही है। मृत्यु के क्षणों में समस्त संसार का धन किस काम का है? उपनिषद के प्रसिद्ध नचिकेता ने कितना अच्छा कार्य किया। त्याग से प्राप्त होने वाली विजय के द्वारा उसने स्वयं यम को जीत लिया। सभी कुछ, जिनका रूप है अवश्य नष्ट होंगे। यही सभी रूपों की नियति है। मन भी एक रूप है इसका भी परिवर्तन तथा विघटन अनिवार्य है। इसलिये तुम नाम रूप के परे जाओ।

सर्वोच्च दृष्टिकोण से किसी भी वस्तु का उतना मूल्य नहीं है। सर्वोच्च अर्थ में एकबार यदि तुमने अपने हृदय को प्रभु को समर्पित कर दिया तो फिर तुम्हें कोई भी वस्तु बाँध नहीं सकती। इससे तुम्हारे मन में स्वाधीनता तथा विस्तार का भाव आना चाहिये। प्रेम सबसे बड़ी शक्ति है। प्रेम की शक्ति के द्वारा प्रेमास्पद को ढाँकने वाले सभी पर्दों को चीर दिया जा सकता है।

मन को शुद्ध करो! मन को शुद्ध करो!! यही धर्म का सर्वस्व है। धर्म का यही एक मात्र अर्थ है। सर्वोच्च दिशा में विचारों के सतत प्रवाह का अभ्यास करो। लक्ष्य की स्थिरता का अधिकाधिक विकास करो, तब कोई भी वस्तु तुम्हारा सामना नहीं कर सकेगी। जिस प्रकार चील उड़ती है उसी सरलता से तुम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सकोगे। अहो! यदि कोई सतत परमात्मा का चिन्तन कर सके तो वह स्वयं अपने आप में मुक्ति होगी।

अपनी जड़ता से स्वयं को जगाओ। अपने संपूर्ण स्वभाव का पुनर्निर्माण करो। सर्वव्यापी सौंदर्य के प्रति अपनी आँखें खोलो। प्रकृति

से संपर्क करो। बहुत सी बातें जो तुम्हें अभी ज्ञात नहीं हैं, वह प्रकृति तुम्हें सिखा देगी । वह तुम्हें व्यक्तित्व की महान शांति प्रदान करेगी। तुम्हारे चारों ओर के दृश्य में अदृश्य परमात्मा को देखो। साक्षी बनो। कर्ता कर्मफल के भार से दबा होता है। यदि तुम्हें कर्म करना ही पड़े तो कर्म में भी साक्षी बनो। आत्मनिरीक्षण तथा आत्मसाक्षात्कार के अतिरिक्त और किसी बात की चिंता न करो। तुममें जो सर्वश्रेष्ठ है उसे पुष्ट करो। दूसरों के मतामत की ओर ध्यान न दो। शक्तिशाली बनो। अपने स्वयं की आत्मा को गुरु बनाओ। महान् आदर्श तथा विचारों से उसे लबालब भर दो जिससे कि वह स्वयं सर्वोच्च परमात्मा को अभिव्यक्त करने के लिये व्याकुल हो उठे। एक बार सशक्त हो उठने पर वह स्वयं जाग उठेगा। तब स्वप्न में भी न सोची गई वस्तुएँ तुम्हारे सामने उद्घाटित हो उठेंगी।

निन्दा से बचो। क्या तुम अपने बंधु के रखवाले हो? क्या तुम उसके कर्मों के संरक्षक हो? किसने तुम्हें उसका निर्णायक बनाया है? दूसरों के अनुचित आचरण की सूक्ष्म स्मृति तक को पोंछ डालो। अपने स्वयं की चिन्ता करो। तुम स्वयं में ही बहुत सी निन्दनीय बातें पाओगे। साथ ही बहुत सी ऐसी भी बातें पाओगे जो तुम्हें आनन्द देंगी। प्रत्येक व्यक्ति का उसके अपने आप में उसका अपना संसार होना चाहिये। तुम्हारे भीतर के (निम्न) मनुष्य को मर जाने दो जिससे कि परमात्मा प्रकाशित हो सके। किसी भी बात की चिन्ता न कर शांति से रहना क्या अच्छा नहीं है? मनुष्य पर आस्था न रखो। आस्था रखो भगवान पर। वे तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे तथा तुम्हें आगे ले जायेंगे।

संसार जो अशांति का समुद्र है उसमें एक चट्टान की तरह खड़े रहो। विविधता के इस असीम जंगल में सिंह के समान विचरण करो। सर्वशक्तिमत्ता तुम्हारे पीछे है, किन्तु पहले सांसारिक या केवल भौतिक शक्ति प्राप्ति की सभी इच्छाओं का दमन करो। तुम्हारे मार्ग में आने वाली माया की सभी बाधाओं को वैराग्य के खड्ग से दो टुकड़े कर डालो। किसी पर शासन न करो। किसी को तुम पर शासन न करने दो। मृत्यु से न डरो क्योंकि इसी क्षण भी मृत्यु तुम्हारा प्राण हरण कर ले तो भी यह जान रखो कि तुम सही मार्ग पर हो। अतः निर्भय हो कर बढ़ चलो। महत् जीवन में मृत्यु एक घटना मात्र है। मृत्यु के परे भी आध्यात्मिक उन्नति

की सुविधायें और संभावनायें हैं। व्यक्ति क्या हो सकता है इसका कोई अन्त नहीं। सब कुछ व्यक्तिगत प्रयत्न पर निर्भर करता है। ईश्वर की कृपा तो सदैव हमारे साथ है ही।

अपने आसपास की सभी वस्तुओं का अध्ययन करो। और तुम पाओगे कि प्रत्येक वस्तु में तुम्हारे लिये एक आध्यात्मिक सन्देश है। एक की ही सर्वोपरि सत्ता है। वह एक जो अनेक के प्रत्येक पक्ष में विद्यमान है। विविधता अपने विक्षेपकारी भेदों द्वारा भले ही तुम्हें छलती रहे तब भी तुम सर्वव्यापी एकत्व की पूजा करो। आभास छलता है जैसी कि कहावत है। किन्तु मनुष्य का यह कर्त्तव्य है की वह छल को पकड़े तथा सभी आभासों के पीछे के सत्य का दर्शन करे। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों का अभिरक्षक है, प्रत्येक व्यक्ति अपने बंधन को तोड़ने वाला है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपने लिये सत्य की खोज करनी होगी। दूसरा कोई रास्ता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही भूमि पर खड़ा है। प्रत्येक को अपना युद्ध स्वयं लड़ना होगा। क्योंकि अनुभूति सदैव पूर्णतः व्यक्तिगत अनुभव ही है। अन्ततोगत्वा प्रत्येक व्यक्ति स्वयं का उद्धारकर्ता तथा स्वामी है। क्योंकि परमात्मा जो सर्वदा वर्तमान है वह पूर्ण एकत्व के रूप में व्यक्तित्व के प्रत्येक अंश में उद्भासित हो उठेगा । यही उपदेश है। इसकी ही अनुभूति करनी है और इसकी अनुभूति होने पर वह महान् लक्ष्य (ईश्वर दर्शन) भी प्राप्त हो जायेगा।

गुरुदेव की वाणी ने पुनः मेरी आत्मा से कहाः–

अपने शरीर से ऐसा व्यवहार करो मानों वह तुमसे भिन्न कोई वस्तु है। यदि तुम उससे कहो कि ऐसा कर तो वह करेगा। आचार्य ने कहा है अंगीठी की सजावट के ऊपर की घड़ी के समान स्वयं को बैठे हुए कल्पना करो तथा तुम्हारे अपने आने जाने को देखो। तुम पाओगे कि उनमें से अधिकांश कितने व्यर्थ तथा निरर्थक हैं। अतः तात्कालिक घटनाओं को अनावश्यक महत्त्व न दो, न ही उनसे आसक्त होओ। यदि भौतिक वस्तुओं का अध्यात्मीकरण नहीं कर सकते तो उनकी उपेक्षा करो। दैनंदिन जीवन में आध्यात्मिकता को लाना अवश्य ही बहुत कठिन है, किन्तु परीक्षा वही है। केवल (आध्यात्मिक) ऊँचाइयों में ही नहीं (सांसारिक परिस्थितियों) घाटियों में भी ईश्वर को अपने सामने देखना होगा। सचमुच वह मन कितना एकाग्र होता है जो कि साधारण परिस्थितियों में भी आध्यात्मिकता की झलक देख सकता है।

अहंकार के थोड़े से भी चिह्न को उखाड़ फेंको। जितना अधिक तुम अपने व्यक्तित्व का अध्ययन करोगे उतना ही अधिक तुम पाओगे कि तुम्हारे कार्यों तथा विचारों में अहंकार ही दौड़ा आ रहा है। अहंकार को केवल जीतना ही नहीं होगा अपितु उसका पूर्णतः दमन करना होगा। आत्मदोष तथा आत्मग्लानि में भी इस दमित अहंकार का अस्तित्व दीख पड़ता है। सच्चा आत्मसाक्षात्कारी पुरुष न तो दूसरों को दोष देता है न स्वयं को ही। महत् वस्तुओं से आवृत होने के कारण वह परिस्थितियों की उपेक्षा करता है।

अपने को मरा हुआ देखो। जीवित अवस्था में भी स्वयं को शरीर से भिन्न कर लो। वस्तुओं के रूप नहीं उनकी आत्मा को देखो। तब तुम्हारी नई और शुद्ध दृष्टि में समस्त जीवन एक नये आलोक में दीख पड़ेगा तथा तुम्हारे सामने उच्चतर और नये रूप में उद्भासित होगा। एकदम नये आध्यात्मिक रूपों में।

मानसिक तथा नैतिक अनुभवों के महत् सातत्य पर विचार करो। तब तुम्हारे सामने यह स्पष्ट हो जायेगा कि जब तक प्रगति पूर्णता में पर्यवसित नहीं होती तब तक मनुष्य का पुनः पुनः जन्म होता ही रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों, इच्छाओं तथा कर्मों द्वारा एक एक संसार का निर्माण कर रहा है जिसका कि वह स्वयं शासक होगा। वस्तुगत अनुभवों के समुद्र की तलहटी का स्पर्श कर तथा उससे परे व्यक्तिगत चेतना के शुद्ध आत्मा की अनुभूति के प्रयत्न में जीव को एक नहीं असंख्य शरीर धारण करने पड़ते हैं।

सिद्धियों तथा कोरी विद्या की इच्छा का दमन करो। मिथ्याज्ञान का बढ़ना तथा सिद्धियाँ प्राप्त करना अपने आप में विनाशकारी हैं क्योंकि वे अहंकार को बढ़ाते हैं तथा व्यक्ति को अधिक स्वार्थी बना देते हैं। चेतना का विभिन्न प्रकार से विस्तार आध्यात्मिक प्रक्रिया की एक मानी हुई घटना है। किन्तु यह पूर्णतः आनुसंगिक है। परन्तु जब इसे ही आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य से श्रेष्ठ मान लिया जाता है तब यह साधना के मार्ग में हज़ारों गुण अधिक बाधा उत्पन्न कर देता है। जैसे कि तुम एक पागल कुत्ते से सावधान रहते हो उसी प्रकार अहंकार से सावधान रहो। जिस प्रकार कि तुम विष का स्पर्श नहीं करोगे या विषधर साँप से नहीं खेलोगे, उसी प्रकार सिद्धियों, तथाकथित सिद्धियों से दूर रहो। अपने मन तथा बुद्धि की सभी शक्तियों को ईश्वर की ओर मोड़ दो। आध्यात्मिक जीवन का और क्या लक्ष्य होगा?

स्वाधीन बनो! सभी उपायों से स्वाधीन बनो!! अपनी संभावनाओं तथा परमात्मा की कृपा पर विश्वास करो। दूसरों पर भरोसा तुम्हें अधिकाधिक असहाय और दुःखी करेगा। यदि तुम स्वयं पर विश्वास नहीं करोगे तो अत्यन्त पीड़ादायक अनुभव तुम्हें वह करने के लिये बाध्य करेंगे। विधि के विधान में भावुकता या आत्मकरुणा के लिये कोई स्थान नहीं है। वह तुम्हारे पशुस्वभाव को खराद कर आध्यात्मिक आकार में बदल देगा। उसका एक मात्र उद्देश्य है तुम्हारे चरित्र में परिवर्तन करना। फिर विलम्ब क्यों? जिसकी अनुभूति इसी क्षण की जा सकती है उसे आगामी जन्म के लिये क्यों रख छोड़ो? निष्ठावान बनो। प्रचण्ड निष्ठावान बनो। अधिकारी या अनधिकारी होने का प्रश्न नहीं है। तुम्हारी

मुक्ति निश्चित है। क्योंकि उच्च जीवन में तुम्हें बलपूर्वक ठेल दिया जायगा। यही प्रत्येक व्यक्ति की नियति है। ईश्वरत्व को व्यक्त करना ही पड़ेगा।

उसी प्रकार एक आध्यात्मिक उदासीनता की भी आवश्यकता है। दिन भर में आनेवाली हज़ारों क्षुब्ध करने वाली घटनाओं की ओर क्यों ध्यान देते हो? स्वाधीन बनो। यह जान लो कि यह सब तुम्हारे उस पूर्वसंस्कार के महाप्रवाह की धाराएँ हैं जिनसे तुम्हें स्वयं को सदैव के लिये अलग कर लेना है। जो होता है होने दो, तुम्हारे विषय में लोग जो भी कहें कहने दो। तुम्हारे लिये यह सब मृगतृष्णा के समान हो जाना चाहिये। यदि सचमुच तुमने संसार का त्याग कर दिया है तो फिर तुम क्षुब्ध कैसे हो सकते हो! अपने आदर्श और प्रयत्नों में स्थिर रहो।

आलोचक कला की दीर्घाओं में विभिन्न चित्रों को देखता है जिसमें कुछ भीषण त्रासदिक होते हैं, कुछ अत्यन्त सुन्दर होते हैं। किन्तु वह स्वयं वास्तव में उन चित्रों में अंकित भावनाओं से प्रभावित नहीं होता। तुम भी उसी प्रकार करो। जीवन मानो एक कला दीर्घा है, अनुभव मानो विभिन्न चित्र हैं जो समय की दीवार पर टंगे हुए हैं। यदि तुम करना चाहते हो तो उनका अध्ययन करो किन्तु किसी भी प्रकार की भावनात्मक रुचि से स्वयं को मुक्त रखो। अध्ययन करो किन्तु उससे अप्रभावित रहो। इसे ध्यान में रखने पर तुम सचमुच ही साक्षी हो जाओगे। जिस प्रकार एक चिकित्सक शरीर या उसके रोगों का अध्ययन करता है उसी प्रकार अपने मन तथा अनुभवों का अध्ययन करो। अपने स्वयं की आलोचना में कठोर बनो तभी तुम वास्तविक उन्नति कर पाओगे।

रास्ता लम्बा है। (आत्म) शिक्षा की प्रक्रिया में कई जीवन आवश्यक हैं। किन्तु गहन जीवन जी कर व्यक्ति इस चक्करदार रास्ते से बच सकता है जिसपर की उथला जीवन जीनेवाले चलते हैं, जिनका जीवन केवल उनके व्यक्तित्व के सतह पर ही होता है। आध्यात्मिक विषयों पर गहराई से लगातार विचार करना, इच्छाओं को उच्चाकांक्षा में बदलना, वासनाओं को आध्यात्मिक भाव से भर देना, ये सब इसके उपाय हैं। जब तक कि तुम्हारा संपूर्ण स्वभाव आध्यात्मिक आदर्श तथा इच्छाओं से परिपूर्ण नहीं हो जाता दिन भर की प्रत्येक घड़ी में सतत तद्रूप

होने का दृढ़ निश्चय करो। सदैव सावधान रहो। जो सभी शुभ वस्तुओं के दाता हैं उनके प्रति सभी कुछ समर्पित कर दो। जो तुम्हें आध्यात्मिक मार्ग पर स्थिर रखे, फिर चाहे वह मृत्यु का भय ही क्यों न हो, उसे पकड़ रखो। तुम एक नये पौधे हो जिसे सहारे की आवश्यकता है। जो भी वस्तु तुम्हें शक्तिशाली बनाये उसे पकड़ लो। दृढ़ता तथा प्रचण्डता से उससे चिपके रहो। अविचल, निष्ठावान, उद्यत चित्त, सदाचारी बनो तथा प्रत्येक क्षण एवं अवसर का लाभ उठाओ। पथ बहुत लम्बा है। समय भाग रहा है इसलिये जैसा कि मैंने पहले भी बार बार तुमसे कहा है अपने संपूर्ण व्यक्तित्व को समर्पित कर स्वयं को कार्य में झोंक दो और तब तुम लक्ष्य पर पहुँच जाओगे।

गुरुदेव की वाणी ने कहाः–

वत्स! तुम यह जानते के लिये बाध्य किये जाओगे कि संसार में कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिनका सामना तुम्हें अवश्य करना पड़ेगा तथा जो तुम्हारे पूर्व कर्मों के कारण अजेय प्रतीत होंगी। उनके कारण झुँझलाइट में अधीर न होओ। यह जान लो कि जहाँ चिन्ता और अपेक्षायें है, वहाँ अन्ध आसक्ति भी है। अपना कार्य करने के पश्चात् अलग हो जाओ। कार्य के अपने कर्मविधान के अनुसार उसे समय के प्रवाह में बहने दो, जैसा कि वह बहेगा ही। अपना कार्य समाप्त कर लेने के पश्चात् तुम्हारा नारा हो, दूर रहो! अपनी संपूर्ण शक्ति से कर्म करो तथा उसके पश्चात् अपनी संपूर्ण शक्ति से समर्पित हो जाओ। किसी भी घटना में हतोत्साहित न होओ, क्योंकि कर्मफल शुभ अशुभ जो भी हो सभी गौण हैं। उन्हें त्याग दो! उन्हें त्याग दो!! तथा यह अच्छी तरह स्मरण रखो कि कर्म करने में कर्म की दक्षता उद्देश्य नहीं है, उद्देश्य है, कर्म के द्वारा व्यक्तित्व की परिपूर्णता।

अपने ही कर्मों को तुम वश में नहीं कर सकते, दूसरे के कर्मों पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। उसका कर्म एक प्रकार का है, तुम्हारा कर्म दूसरे प्रकार का। आलोचना न करो, आशा न रखो, भयभीत न होओ। सभी कुछ ठीक हो जायेगा। अनुभव आता जाता है, व्यग्र न होओ। तुम सत्य के धरातल पर खड़े होओ। अनुभव को तुम्हें मुक्त होना सिखाने दो। चाहे जो हो जाय और अधिक बंधन न बाँधो। और क्या तुम इतने मूर्ख हो कि एक ही प्रकार के कर्म में बँध जाओ? क्या मेरे कर्म का क्षेत्र असीम नहीं है? कर्मयोग तथा सच्चे कर्म के महान आदर्श को ईर्ष्या तथा आसक्ति से नीचा न करो। बच्चों जैसी भावनाओं को तुम पर अधिकार न करने दो। आशा न रखो, प्रत्याशा न रखो। संसार के प्रवाह तुम्हारे व्यक्तित्व को जहाँ ले जायें ले जाने दो। स्मरण रखो तुम्हारा वास्तविक स्वरूप समुद्रवत् है तथा उदासीन रहो। मन भी सूक्ष्म रूप में शरीर ही है

यह जान लो। इसलिये तुम्हारी तपस्या को मानसिक बनाओ। अपनी सभी मानसिक वृत्तियों को शारीरिक वृत्ति ही समझो तथा निर्लिप्त रहो। तुम आत्मा हो अपनी आत्मा से ही सरोकार रखो। अपने स्वयं का जीवन जीओ। स्वयं के प्रति सच्चे बनो।

वत्स! जीवन को शांतिपूर्वक ग्रहण करो। सभी समय शांत रहो। किसी भी बात पर क्षुब्ध न होओ। तुम्हारा शारीरिक स्वभाव बहुत अधिक क्षुब्धकारी ढंग से राजसिक है। किन्तु राजसिकता को छोड़ो नहीं, उसका अध्यात्मीकरण करो। यही रहस्य है। अपने आप पर इतना अधिकार रखो कि किसी भी मुहूर्त अपनी चंचल वृत्ति को शांत कर ध्यान की अवस्था में रह सको। सर्वतोमुखी बनो। कर्म तुम्हें जिन लोगों के संपर्क मे लाता है उनसे तुम्हारा संबंध ऐसा हो कि तुम उनके भीतर की महानता के साक्षी बन सको। और यदि दोष देखना ही हो तो पहले अपने दोषों को देखो न कि तुम्हारे भाई के दोषों को। तात्कालिक क्षणो के अनुभवों से विह्वल न हो जाओ। इस दिन के बाद उस अनुभव का क्या महत्त्व रह जायेगा।

सारे धार्मिक जीवन का अर्थ है अहंकार की निवृत्ति। इसकी जड़ें इतनी गहरी जमी हैं कि किसी असाध्य रोग के कारण को खोज पाने के समान कठिन है। यह हज़ारों प्रकार के छद्मों में अपने को छिपाता है किन्तु सभी छद्मों में सबसे अधिक धोखेबाज़ तथा दुष्ट छद्म आध्यात्मिक छद्म है। असावधानीपूर्वक यह विश्वास करते हुए कि तुम आध्यात्मिक उद्देश्य के लिये कर्म कर रहे हो किन्तु तुम यह पाओगे कि इसके मूल में संभवतः कोई स्वार्थ तुम्हें प्रभावित कर रहा है। अतएव तीक्ष्णदृष्टि रखो। केवल व्यक्तित्व को जीतकर तथा उसके पूर्ण विसर्जन द्वारा उच्च अमूर्त को समझा तथा अनुभव किया जा सकता है। स्वयं के प्रति मर जाना जिससे कि सच्चा आध्यात्मिक जीवन जी सकें यही आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है। कच्छ प्रकाश (दल दल में दिखने वाला अस्थायी प्रकाश) से संतुष्ट रहने वाले बहुत से लोग असल सूर्य को नहीं देख पाते। जब स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्व का पूर्ण निराकरण होता है तभी वास्तविक अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है। इसे स्मरण रखो। निराकार में मन को स्थिर करो। आत्मविजयी व्यक्तित्व में ही परमात्मा

की ज्योति प्रकाशित होती है। जब वह ज्योति पूर्णतः प्रकाशित होती है, तभी निर्वाण की अभिव्यक्ति होती है।

ध्यान के शांत क्षणों में गुरुदेव की वाणी ने मेरी आत्मा से आनंद के ये शब्द कहेः-

वत्स! जब तक विचार हैं तब तक उसका मूर्त पक्ष भी रहेगा। इस कारण देवता तथा अन्य आध्यात्मिक यथार्थताएँ मूलतः सत्य हैं। विश्व के असंख्य स्तर हैं। किन्तु उन सभी के भीतर ब्रह्म की कांति चमक रही है। जब तुम ब्रह्म की अनुभूति करोगे तब तुम्हारे लिए चेतना की सभी स्थिति और अवस्थाएँ एक हो जायेंगी। इसलिए सभी सत्यों को स्वीकार करो तथा परमात्मा के सभी पक्षों की पूजा करो। उदारमना एवं विश्वजनीन बनो। धर्म के क्षेत्र का विस्तार करो। जीवन के सभी क्षेत्रों में धर्म की भावना को एक संभावना के रूप में देखो। जहाँ कहीं भी, जिस किसी प्रकार का अनुभव हो, उसकी आध्यात्मिक व्याख्या करो, वहाँ ईश्वर की वाणी सुनी जा सकेगी। सभी घटनाओं में दूसरे पक्ष को देखना सीखो तब तुम कभी कट्टर न बनोगे। आध्यात्मिक समर्पण के द्वारा अति साधारण स्तर का कार्य भी पारमार्थिक बन जाता है। समस्त विश्व को पारमार्थिक जीवन से परिपूर्ण देखो। सभी भेदबुद्धि को पोंछ डालो। दृष्टि की सारी संकुचितता को नष्ट कर दो। दृष्टिसीमा का तब तक विस्तार करो जब तक कि वह असीम तथा सर्वग्राही न हो जाय। भगवान कहते हैं जहाँ भी सदाचार है यंह जान लो कि मैं वहाँ हूँ। पौधे के चारों ओर बेड़ा लगाना उपयोगी है किन्तु अंकुर को उसकी छाया तले आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आश्रय तथा सुरक्षा देने वाला विशाल वृक्ष अवश्य होना चाहिये। उसी प्रकार भेदबुद्धि किसी भावविशेष के विकास के लिये उपयोगी हो सकती है किन्तु ऐसा समय अवश्य आना चाहिये कि वह भावविशेष विश्वजनीन रूप अवश्य ले ले। उदार बनो वत्स, उदार बनो। औदार्य को एक स्वाभाविक वृत्ति बना लो। क्योंकि बौद्धिक रूप में जो उपलब्ध किया जाय उसे भावनात्मक रूप में भी अवश्य उपलब्ध करना चाहिये।

समस्त विश्व को समान प्रेम की दृष्टि से देखो। अपनी व्यक्तिगत मित्रता की निष्ठा के द्वारा यह समझ लो कि प्रत्येक व्यक्तिगत जीवन में मौलिक रूप में वही सुन्दर ज्योति प्रकाशित हो रही है जिसे तुम उसमें देखते हो, जिसे तुम भाई के प्रिय नाम से पुकारते हो। विश्वजनीन बनो। अपने शत्रु से भी प्रेम करो। शत्रु मित्र का यह भेद केवल सतह पर ही है। गहरे! भीतर गहरे में केवल ब्रह्म ही है। सभी वस्तु तथा व्यक्ति में केवल ब्रह्म को ही देखना सीखो। किन्तु फिर भी अप्रियता तथा स्वभाव के कलह से बचने के लिये पर्याप्त सावधान रहो। सर्वोच्च अर्थ में वास्तविक संबंध वही है जिसमें संबंधत्व का भान ही नही है और इसीलिये आध्यात्मिक है। व्यष्टि के बदले समष्टि को पहचानना सीखो। शरीर के स्थान पर आत्मा को पहचानना सीखो। तब तुम अपने मित्र के अधिक निकट होओगे। मृत्यु भी तुम्हें अलग न कर सकेगी तथा स्वयं के भीतर सभी प्रकार के भेदों को जीत लेने के कारण तुम्हारी दृष्टि में कोई शत्रु भी न होगा। सभी रूपों में जो सौंदर्य है उसे देखो किन्तु उसे प्राप्त करने की इच्छा के बदले उसकी पूजा करो। प्रत्येक जीव तथा रूप तुम्हारे लिये आध्यात्मिक सन्देह हो।

सभी विचार जिस स्वभाव से उत्पन्न होते हैं, उसी से संबंधित होते हैं। इसलिये दूसरों की बातें सुनने पर उसके अनुभवात्मक पक्ष को देखो, तर्क को नहीं। तब कोई वाद विवाद उत्पन्न नहीं होगा, तथा तुम्हारे स्वयं के अनुभव को नई प्रेरणा मिलेगी। फिर यह भी जान रखो कि मौन प्रायः उत्तम होता है तथा बोलना और तर्क करना हमारी शक्तियों का अपव्यय करता है। तथा सदैव यह स्मरण रखो कि अपने हीरों को बैंगनवालों के सामने कभी न डालो। उसी प्रकार सभी भावनायें भी स्वभाव से ही संबंधित होती हैं। अतः उनके प्रति आसक्त होने के बदले उनके साक्षी बनो। यह जान लो कि विचार तथा भावनाएँ दोनों ही माया के क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। किन्तु माया का भी अध्यात्मीकरण करना होगा। अपने जीवभाव को परमात्मभाव के अधिकार में हो जाने दो। इसलिये अनासक्त रहो। क्योंकि तुम आज जो सोचते हो तथा अनुभव करते हो वह कल, हो सकता है, तुम्हें आगे न बढ़ाये। तथा सर्वोपरि यह जान लो कि अपने सच्चे स्वरूप में तुम भाव और विचारों से मुक्त हो। भाव और

विचार तुम्हारे सत्य स्वरूप को प्रगट करने में सहायक मात्र होते हैं। इसलिये अपने भाव और विचारों को महान् तथा विश्वजनीन होने दो तथा सर्वोपरि उन्हें पूर्णतः निस्वार्थ होने दो। तब इस संसार के घोर अहंकार में भी तुम उस शाश्वत ज्योति को देख सकोगे। भले ही प्रारंभ में वह क्षीण क्यों न प्रतीत हो।

श्री गुरु देव ने कहाः–

कोई योजनायें न बनाओ! संसारी लोग ही योजनायें बनाते हैं। परिस्थितियों से स्वतंत्र रहो। अनिश्चय को ही अपना निश्चय बना लो। तथा सर्वथा संन्यास के व्रतों के अनुसार जीवनयापन करो। कल क्या होगा इसकी चिन्ता क्यों करते हो? वर्तमान जैसा आता है उसी में उच्च जीवन व्यतीत करो। भूत, भविष्य और वर्तमान के प्रत्येक अनुभव के साथ परम प्रेमास्पद का नाम युक्त करो। इस प्रकार तुम्हारी इच्छाओं का अध्यात्मीकरण होगा। जिस प्रकार तुम दीवार पर टँगे चित्र को देखते हो उसी प्रकार उन्हें देखो। उनकी विषयवस्तु दुखान्त, साधारण या मोहक हो सकती है किन्तु तुम उसे मात्र एक आलोचक की दृष्टि से देखो। वे भले बुरे जैसे भी हों यह जान रखो कि तुम्हारे अंतःकरण में अवस्थित आत्मा सभी अनुभवों से सर्वथा पृथक है।

और जहाँ तक संगठनों का प्रश्न है उनकी उपयोगिता तथा जिस महान् आदर्श को वे प्रतिपादित करती हैं उनका महत्त्व स्वीकार करो किन्तु तुम स्वयं निर्लिप्त रहो। धार्मिक जीवन सर्वथा व्यक्तिगत स्वानुभवात्मक है। भले ही किसी प्रतिष्ठान में धार्मिक जीवन का आरंभ हो किन्तु उसे प्रतिष्ठान से ऊपर अवश्य उठना चाहिये। नियमों से हो कर नियमों के परे जाना ही अनुभूति का मार्ग है। यह जान कर मुक्त हो जाओ। जो कार्य आये उसे करो तथा उसके भीतर मुक्त रहो। यदि संगठन करना ही है तो विचारों का संगठन करो किन्तु केवल संगठनात्मक रूप का विस्तार करने के लिये कभी परिश्रम न करो। कोई संगठन तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता, तुम्हें स्वयं अपना उद्धार करना होगा। साधारणतः संगठनों का उद्देश्य कितना भी धार्मिक तथा असाम्प्रदायिक क्यों न हो उनका ह्रास सांसारिकता में हो जाता है। साम्प्रदायिकता से सावधान रहो। रूढ़िवाद और कट्टरता से दूर रहो। सर्वसमन्वयी बनो।

अपने प्रेरणा स्रोत के प्रति सदैव सत्यनिष्ठ तथा निष्ठावान रहो। विश्वास और प्रेम रखो, आशा तथा धैर्य रखो। माया के परदे तुम्हारे लिये शीघ्र ही विदीर्ण हो जायेंगे तथा तुम अपने प्रेमास्पद को मेरे सत्य स्वरूप में देख पाओगे । मेरे व्यक्तित्व या यों कहें मेरे व्यक्तित्व के संबंध में तुम्हारी अपनी धारणा में आबद्ध न होओ। मैं वह नही हूँ जो इस लोक में तुम्हारे व्यक्तित्व के समान एक व्यक्तित्व से मानवीय सीमाओं और दुर्बलताओं के साथ जुड़ा हुआ था। वह व्यक्तित्व तो मैंने धारण किया था। मेरा वास्तविक स्वरूप तो वह है जिसने वहाँ मेरे उपदेशों को प्रेरित किया। जैसा मैं हूँ उस रूप में मुझे जानो, जैसा था उसमें नहीं। आत्मानुभूत्यात्मक रूपमें मुझे अपनी आत्मा में जानो, और तब तुम सभी में आत्मा के दर्शन करोगे तथा सीमाओं एवं विविधता का तुम पर कोई प्रभाव न होगा। मैं बाह्य नहीं हूँ। मैं अन्तःकरण में निवास करता हूँ। तुम्हारी प्रेरणा में मैं तुम्हारे साथ हूँ। देश काल संबंधों का आत्मा पर कोई अधिकार नहीं है तथा वे आध्यात्मिक संबंध के बीच में नहीं आ सकते। मैं तुम्हारा अन्तर्यामी हूँ। मुझे उस रूप में जानो और फिर तुम्हारा जन्म चाहे मुझसे दस हज़ार वर्ष पश्चात् भी हुआ हो, चाहे मृत्यु के समय भी हमें अलग करने वाले परदे नष्ट न हुए हों, उससे कुछ आता जाता नहीं है। प्रेम तथा अनुभूति में कोई सीमायें नहीं हैं। मैं इसकी भी आवश्यकता अनुभव कर सकता हूँ कि दृश्य रूप में तुम्हारा अस्तित्व मुझसे भिन्न रहे तथा तुम परिश्रम करो। यद्यपि तुम नहीं देख पाते किन्तु मैं आवरणों के आर-पार देखता हूँ। मैं सर्वदा तुम्हारे साथ हूँ भले ही तुम इसे जानो या न जानो। फिर भी वह समय आयेगा जब तुम इस सत्य के संबंध में सचेत होओगे। जिस प्रकार हाथी के दाँत एक बार निकल जाने पर फिर वापस नहीं जाते उसी प्रकार गुरु का प्रेम एक बार प्रदान करने पर अनंत काल तक रहता है।

मेरे सेवक हो कर तुमने स्वयं को मुक्त कर लिया है। तुम्हारी मुक्ति उसी अनुपात में है जिस अनुपात में तुम मेरी सेवा करते हो। ओर यह जान लो कि तुम यद्यपि मेरे लिये परिश्रम करते हो किन्तु मेरी दृष्टि में मेरे कार्य के लिये परिश्रम करने की अपेक्षा मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम और विश्वास

अधिक मूल्यवान है। ब्रह्माण्ड असीम है तथा समय शाश्वत किन्तु मैं सदैव तुम्हारी पुकार पर आने को सन्नद्ध हूँ।

तुम्हें किसी रूप की आवश्यकता नहीं है। संन्यास वृत्ति का ही महत्त्व है, वेश का नहीं। विद्वत् संन्यास ही असल संन्यास है जो कि अन्तर्ज्ञान का पर्यायवाची है। तुम्हारा नाम लक्ष्य के लिये आप्राण चेष्टा करनेवालों में हो। साधु जीवन में अनन्त विकास है। वेश कुछ नहीं जीवन ही सब कुछ है।

शक्ति में इन्द्र के समान बनो। स्थिरता में हिमालय के समान बनो। सर्वोपरि निस्वार्थी बनो तथा अपनी आत्मा से संपर्क करो। मेरे नाम को तुम्हारा मंत्र बन जाने दो। मेरी आत्मा से तुम्हारी आत्मा के मिलन को तुम्हारा योग बन जाने दो। वस्तुओं की अन्तरात्मा में मैं और तुम एक हैं इस सचेत ज्ञान को तुम्हारी अनुभूति बनने दो। भेद ही मृत्यु है। एकत्व ही जीवन है।

तुमने मेरी वाणी सुनी है; तुमने मेरा उपदेश ग्रहण किया है, अब निःशंक हो कर उनका पालन करो। असीम प्रेम करो। निःस्वार्थ कार्य करो। मेरे उपकरण बन जाओ। तुम्हारे व्यक्तित्व को ही मेरा बन जाने दो। कहो, शिवोऽहम्!!

यह समस्त ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म है। तुममें और मुझमें जो समान रूप से ब्रह्म है उसे खोजो। उस ब्रह्म को स्वयं में तथा सभी में एकम् अद्वितीयम् सच्चिदानन्द के रूप में अनुभव करो और मुक्त हो जाओ।

गुरुदेव के इन शब्दों को दिन पर दिन ध्यान की घड़ियों में सुनते हुये गुरु शिष्य के वास्तविक संबंध के विषय में मैं सचेत हो सका। एक अविचल और शाश्वत अनुभूति मेरी अपनी हो गई तथा मैंने यह जान लिया कि दूर या पास, जीवन या मृत्यु, सभी में एक महान् जीवन्त अस्तित्व सदैव मेरे निकट है। एक अस्तित्व जो देश या काल से सीमित नहीं है, वह अस्तित्व जिसमें अलगाव नहीं है। और गुरुदेव के पास मैं रो पड़ा। तथा उस समय एक महान ज्योति ने मुझे आवृत कर लिया।

"अपनी कृपा से आपने मुझे अंधकार से बाहर निकाला है। मैं कुछ भी नहीं था किन्तु आपने मुझे उसी रूप में स्वीकार किया और एक ऐसा भक्त बना दिया जो कि अपने अन्तर्निहित असीम शक्ति के संबंध में सजग है। जबसे मैंने आपकी वाणी सुनी और ऐसे सुनी जैसे कभी न सुने हुए तीव्र संगीत को सुन कर कोई व्यक्ति नशे में धुत हो जाय। किन्तु मेरी स्वयं की प्रतिक्रिया कोलाहलपूर्ण और उबलनेवाली थी तथा जो मैंने सुना उसे समझा नहीं। सामने आपके मुख पर आपकी ज्योति इतनी प्रचण्ड थी कि मैं आपको उस रूप में न देख सका, जैसे कि आप हैं। अतः अज्ञानपूर्वक मैंने उस खजाने को जो आपने मुझे इतनी उदारतापूर्वक दिया था अमर्यादित रूप से नष्ट कर दिया तथा मैंने जघन्य पापी के समान आपकी उपस्थिति में पाप किया। आपका प्रेम और आशीर्वाद जो कि आपने इतनी कृपापूर्वक मेरे प्रति प्रदर्शित किया उस पर मैंने अपनी बेईमानी से आधात किया। मैं आपके लिये अति अयोग्य था। अपने अहंकार में मैं आपको भूल गया तथा आपके स्थान पर स्वयं को मैंने मनुष्य के नेता के स्थान में बिठा दिया जिससे कि लोग मुझे महान् कहें। किन्तु हे प्रभु अब मैंने समझ लिया है। मैंने अपने अशुद्ध हाथों से आपके उपदेशों को दूषित कर दिया तथा आपके उपदेशों को अपवित्र कर दिया। किन्तु आपकी कृपा असीम रही है। मेरे प्रति आपका प्रेम अनिर्वचनीय रहा है। वस्तुतः आपका स्वभाव दिव्य है। माँ का अपने बच्चे के प्रति जो

प्रेम है, आपका अपने शिष्य के प्रति प्रेम उससे भी अधिक है। हे प्रभु! आपने अपनी शक्ति से मुझपर तब तक आघात किया जब तक कि मैं पूर्ण नहीं हो गया तथा आपने मुझे उसी प्रकार गढ़ा जैसा कि एक कुम्हार मिट्टी के लोंदे को जैसा रूप चाहे वैसा रूप दे देता है। आपकी कृपा, आपका धैर्य, आपकी मधुरता, असीम है। मैं आपकी पूजा करता हूँ। मेरे हाथ, पैर, जीभ, आँखें, कान, मेरा संपूर्ण शरीर, मन, इच्छा, भावनायें, मेरा संपूर्ण व्यक्तित्व पूर्णाहुति के रूप में समर्पित हो तथा आपके प्रति मेरी भक्ति की ज्वाला में सब कुछ पवित्र हो जाये। मेरा शुभ, अशुभ, वह सब जो मैं था, हूँ या कभी होऊँगा, जन्म-जन्मान्तर में होऊँगा, वह सब आपके प्रति समर्पित है। आप ही मेरे ईश्वर और मुक्ति हैं। आपही मेरी महान आत्मा हैं। मैं कुछ भी संग्रह न करूँ। आपके हृदय के अतिरिक्त मेरा और कोई घर न हो। अभी इसी क्षण तथा सदैव के लिये मेरा जीवन पवित्रता की प्रभा हो।''

हरिः ओम् तत् सत्

और उसके पश्चात् ध्यान की घड़ियों में मैं सदा बाहर तथा भीतर एक प्राणवन्त उपस्थिति का अनुभव करता रहा एवं आनन्द में विभोर हो कर मैंने महामंत्र सुना तथा उसे दुहराता रहा।

ओम्! सदैव! सदैव! के लिये आपकी आत्मा मैं हूँ। आपकी शक्ति अनंत है।

उठो जागो और जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय बढ़ते चलो। तुम ब्रह्म हो! तुम ब्रह्म हो!!

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

विवेकानन्द साहित्य
(१० खण्डों में)

प्रति खण्ड रु० २१ सम्पूर्ण सेट रु० २००

* अगर आप भारत को समझना चाहते हैं, तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए। उनमें सब सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं है।...

– विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर

* निस्सन्देह किसीसे स्वामी विवेकानन्द के लेखों के लिए भूमिका की अपेक्षा नहीं है। वे स्वयं ही अप्रतिहत आकर्षण हैं।...

– महात्मा गाँधी

* उनके शब्द महान् संगीत हैं, बोथोवन-शैली के टुकड़े हैं, हैंडेल के समवेत गान के छन्द-प्रवाह की भाँति उद्दीपक लय हैं। शरीर में विद्युत्स्पर्श के-से आघात की सिहरन का अनुभव किये बिना मैं उनके इन वचनों का स्पर्श नहीं कर सकता जो तीस वर्ष की दूरी पर पुस्तकों के पृष्ठों में बिखरे पड़े हैं। और जब वे नायक के मुख से ज्वलन्त शब्दों में निकले होंगे तब तो न जाने कैसे आघात एवं आवेग पैदा हुए होंगे!

– रोमाँ रोलाँ

Sri Ramakrishna Ashram
LIBRARY
SRINAGAR

Extract from the Rules :—

1. Books are issued for **one month** only.
2. An over-due charge of **20 Paise** per day will be charged for each book kept over-time.
3. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced by the borrower.

हमारे हिन्दी प्रकाशन

श्री रामकृष्ण—संक्षिप्त जीवनी	रु० ३.७५
श्री रामकृष्ण की कहानियाँ	रु० ५.९०
श्री रामकृष्ण की जीवनकथा	रु० ५.९०
श्री सारदादेवी	रु० २९.९०
श्री सारदादेवी—संक्षिप्त जीवनी	रु० ३.७५
स्वामी विवेकानन्द—संक्षिप्त जीवनी	रु० ३.७५
विवेकानन्द की कहानी	रु० ६.९०
विवेकानन्द साहित्य—(सेट १० खंडों में)	रु० २००
मन और उसका निग्रह	रु० ४.९०
साधना और सिद्धि	रु० ५.९०
धर्म क्यों ?	रु० ३.९०

अद्वैत आश्रम
५ डिही इन्टाली रोड
कलकत्ता ७०० ०१४

मूल्य : ४.९

Cover Engraved & Printed by Reproduction Syndicate, Calcutta 700006